ISSN : 0373-1200

मई 2002

सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित

मूल्य : 7.00 रु०

अप्रैल 1915 से प्रकाशित हिन्दी की प्रथम विज्ञान पत्रिका
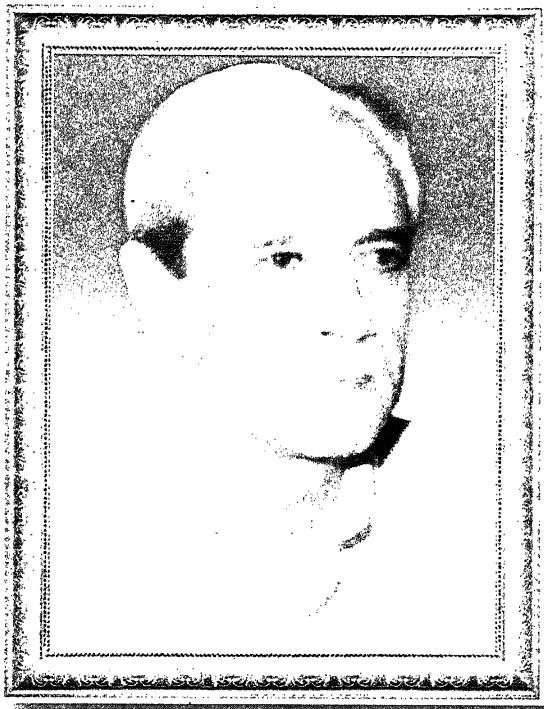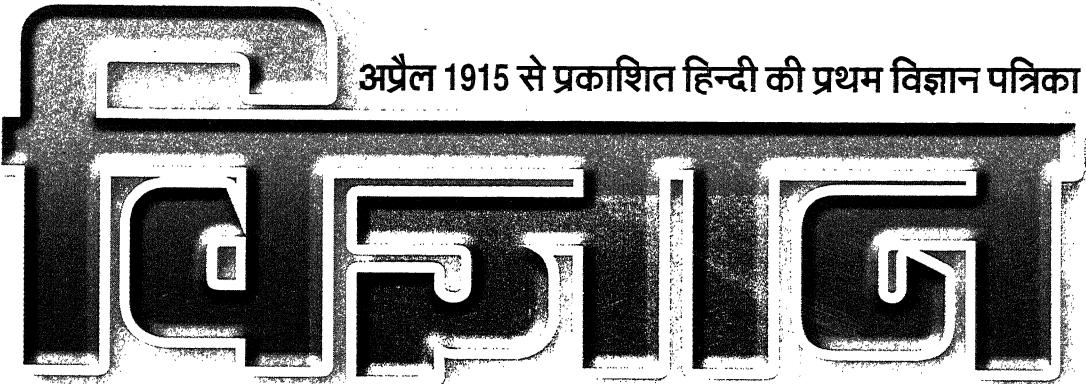
विज्ञान

सतीश धवन

25 सितम्बर 1920 - 3 जनवरी 2002
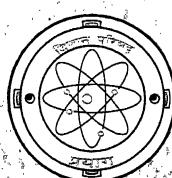
विज्ञान परिषद् प्रयाग

विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 88 अंक 2
मई 2002

मूल्य

आजीवन व्यक्तिगत : 750 रुपये
आजीवन संस्थागत : 1,500 रुपये
त्रिवार्षिक : 210 रुपये
वार्षिक : 75 रुपये
यह प्रति : 7 रुपये

सभापति

डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक एवं प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

मुद्रक

नागरी प्रेस

91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद
फोन : 502935, 500068

कम्प्यूटर कम्पोजिंग

शादाब खालिद

आवरण

चन्द्रा आर्ट्स

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

सतीश धवन : भारत के प्रथम अभियांत्रिकी वैज्ञानिक

✍ डॉ. सुबोध महन्ती

सतीश धवन अपने समय के सर्वाधिक विख्यात भारतीयों में से एक थे। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे एक प्रखर एयरोनाटिकल इंजीनियर, एक उत्कृष्ट अंतरिक्ष विज्ञानी, एक महान नेता और एक सफल प्रशासक थे। अनेक अर्थों में धवन प्रथम इंजीनियरी विज्ञानी थे। इंजीनियरी की समस्याओं पर शोध करने की परंपरा उन्होंने सबसे पहले भारतीय विज्ञान संस्थान में स्थापित की जो क्रमशः देश के अन्य भागों में फैलती गई।

विक्रम साराभाई से जिम्मेदारी प्राप्त करने के बाद सतीश धवन ने देश में अंतरिक्ष तकनीकी को परिपक्वता की स्थिति तक पहुँचाया जो स्वतंत्र भारत में स्थापित सबसे मजबूत और सफलतम संस्था सिद्ध हुई।

वे सामाजिक चेतना से ओतप्रोत एक महान मानवतावादी थे। उन्होंने प्रत्येक कार्य को निष्ठा, जागरूकता के साथ और सामाजिक कर्तव्य समझ कर किया। धवन ने संस्थाओं का निर्माण किया। वे जिस भी संस्था से जुड़े उसे रूपांतरित कर दिया, और ऐसे ऐसे परिणाम प्राप्त किए जो सामान्य परिस्थितियों में वहाँ से अपेक्षित नहीं थे। वे एक सच्चे देशभक्त थे। वे जाति, भाषा, धर्म और राज्य की सीमाओं से ऊपर थे। वे निर्धनों, अल्पसुविधाप्राप्त तथा शोषितों के मित्र थे। इसरो के अध्यक्ष के रूप में जब श्रीहरिकोटा प्रक्षेपण सुविधा स्थापित की जा रही थी तो उन्होंने आदिवासियों के हितों का विशेष ध्यान रखा। उन्होंने वैज्ञानिक शिक्षा, शोध और प्रौद्योगिकी विकास के क्षेत्र में बहुआयामी योगदान दिया। धवन एक महान द्रष्टा थे। इन सबसे बढ़कर वे एक विलक्षण तथा अपने सहयोगियों और अधीनस्थों के प्रेरणास्रोत थे। वे एक उत्कृष्ट शिक्षक थे। वर्तमान संदर्भों में यह एक विरल गुण है। धवन ने अपने छात्रों और सहकर्मियों की कई पीढ़ियों को संस्कारित करके उन्हें महान उपलब्धियों के लिए प्रेरित किया।

वे एक महान नेता कैसे बने ? इस संदर्भ में उनको निकट से जानने वाले लोग उनके कुछ गुणों को बताते हैं जो इस प्रकार हैं :

– वे एक अत्यन्त निपुण वैज्ञानिक थे।

– वे एक उत्कृष्ट मानव थे।

– वे उन सभी के मित्र थे जो उन्हें जानते थे, एक सहायक मित्र, भरोसेमंद एवं विश्वसनीय मित्र।

– उन्होंने हर एक में उसकी क्षमता से बढ़कर अनुभव करने की भावना उत्पन्न की।

– उन्हें जानने वाले लोगों में से किसी को भी उनके आचरण की दृढ़ता, निर्धनों के प्रति चिंता तथा कार्य के प्रति ईमानदारी के बारे में तनिक भी सन्देह नहीं था।

– वे निष्पाप समग्रता वाले व्यक्ति थे।

– वे अत्यन्त नैतिक व्यक्ति थे।

– उन्होनें शीघ्रता के लिए कभी सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया।

– वे सुझावों पर ध्यान देते थे।

– वे उन लोगों में से एक थे जो किसी त्रुटि का आरोप अपने ऊपर ले लेते थे और बड़ी बड़ी सफलताओं का श्रेय लेने के लिए अपने कनिष्ठों को आगे कर देते थे।

– उन्होंने अपने उत्थान की परवाह नहीं की।

– उन्हें दूसरों, विशेषकर अपने छात्रों तथा

अधीनस्थों की उपलब्धियों पर महान प्रसन्नता होती थी।

– वे एक नैसर्गिक कथावाचक थे।

धवन का जन्म 25 सितंबर 1920 को श्रीनगर में एक विख्यात कुल में हुआ था। उनके पिता ब्रिटिश भारत के एक उच्च सिविल अधिकारी थे जिन्होंने विभाजन के समय भारत सरकार के पुनर्स्थापना आयुक्त के रूप में अवकाश प्राप्त किया। उनके एक चाचा बी. डी. धवन पंजाब के राज्यपाल थे। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर (अब पाकिस्तान में) से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उनके विषय असामान्य थे– स्नातक में गणित और भौतिकी, स्नातकोत्तर में अंग्रेजी साहित्य तथा यांत्रिक इंजीनियरी में बी.ई.। मिनेसोटा विश्वविद्यालय यू. एस.ए. से 1947 में एयरोनाटिकल इंजीनियरी में एम.एस. की उपाधि प्राप्त करने के बाद धवन कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलाजी (कैलटेक) गए जहाँ उन्हें एयरोनाटिकल इंजीनियर की उपाधि 1949 में तथा एयरोनाटिक्स तथा गणित में पी.एच.डी. की उपाधि 1951 में मिली। पी.एच. डी. के लिए उन्होंने हान्स डब्ल्यू. लीपमान के साथ कार्य किया जो एक विख्यात वायु अंतरिक्ष विज्ञानी तथा तरल गतिकी विशेषज्ञ थे। अपने पी.एच.डी. शोध में उन्होंने घर्षण–कर्षण के प्रत्यक्ष मापन की एक कुशल विधि की खोज की।

धवन के परिणाम उनके विषय से संबंधित कई पुस्तकों में प्रकाशित हुए जिनमें 'बाउंडरी लेयर थियरी' का प्रथम संस्करण भी शामिल है जो इस विषय की प्रथम पुस्तक है। (इसका प्रकाशन सर्वप्रथम जर्मन भाषा में 1955 में हुआ)।

धवन ने भारतीय विज्ञान संस्थान के एयरोनाटिकल इंजीनियरी विभाग में 1951 में वरिष्ठ वैज्ञानिक अधिकारी के रूप में कार्य प्रारंभ किया। चार वर्षों बाद 1955 में वे प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष बना दिए गए। 1961 में वे संस्थान के निदेशक बने। 42 साल की उम्र में वे संस्थान के सबसे कम उम्र के निदशेक बने और सर्वाधिक 19 वर्षों तक उन्होंने इस पद पर रहकर संस्थान की सेवा की। निदेशक के रूप में उन्होंने अनेक नए वैज्ञानिक कार्यक्रमों की स्थापना की जो स्वचालन और नियंत्रण सिद्धान्त, पदार्थ विज्ञान, अणुजैविकी, जैव भौतिकी, ग्रामीण प्रौद्योगिकी, सैद्धांतिक भौतिकी प्रयुक्त गणित, ठोस अवस्था रसायन तथा वायुमंडलीय विज्ञान आदि क्षेत्रों से सम्बद्ध थे। उन्होंने अनेक क्षेत्रों की प्रतिभाओं को आकर्षित किया। धवन ने ही विख्यात वैज्ञानिकों जैसे जी. एन. रामचन्द्रन, सी.एल. राव तथा जार्ज सुदर्शन आदि को संस्थान में आने के लिए तैयार किया। भारतीय विज्ञान संस्थान को अध्ययन और अनुसंधान का महान केन्द्र बनाने में धवन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही।

धवन ने अंतरिक्ष अनुसंधान, एयरो इंजीनियरी तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रमुख योगदान दिया। उन्होंने तरल यांत्रिकी तथा वायुगतिकी के क्षेत्र में विशेषतः घात तरंगों, सीमांत सतहों, आध्वनिक तथा अतिध्वनिक पवन सुरंगों से संबद्ध उच्च गति प्रवाह समस्याओं पर आरंभिक कार्य किया। उच्च तथा मंद गति प्रवाहों पर त्वचीय घर्षण के प्रत्यक्ष मापन के लिए उनके द्वारा निर्मित उपकरण एक मील का पत्थर साबित हुआ।

धवन ने भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम को मूर्त

7 दिसंबर 1987 को मुंबई विश्वविद्यालय में दिए गए प्रो0 सतीश धवन के व्याख्यान के अंश

"जिस प्रकार वैज्ञानिक अपने आविष्कारों से होने वाले प्रभावों तथा परिणामों से स्वयं को विमुक्त नहीं कर सकते, उसी प्रकार शिक्षक, विद्यालय या विश्वविद्यालय समाज के प्रति उत्तरदायी हैं कि उसके छात्र आगे चल कर किस प्रकार के व्यक्ति बनते हैं।"

"अपनी वर्तमान भौतिक निर्धनता के बावजूद भारत प्रतिभा, आदर्शवाद और सांस्कृतिक मूल्यों के भंडारों में निर्धन नहीं है।"

"यदि भारत के बुद्धिजीवी वास्तव में अपनी पहचान उत्कृष्ट समुदाय के रूप में बनाए जाने के इच्छुक हैं तो उन्हें उन आदर्शों तथा लक्ष्यों के प्रति दृढ़ता एवं लगन प्रदर्शित करनी होगी जिन्होंने भारत के भूतकाल को प्रदीप्त किया और जो स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्रज्वलित हुए।"

रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अंतरिक्ष कार्यक्रम के द्रष्टा विक्रम साराभाई का 30 दिसंबर 1971 को निधन हो गया। चूँकि यह कार्यक्रम अभी अपने शैशव काल में ही था। अतः भारत सरकार को एक ऐसे व्यक्ति की खोज थी जो साराभाई के सपनों को साकार कर सके और भारत को अंतरिक्ष युग में ले जा सके। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने धवन को अंतरिक्षक कार्यक्रम का कार्य भार लेने हेतु आमंत्रित किया। धवन ने सूचित किया कि वे सप्तवर्षीय अवकाश पर हैं और कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलाजी में एक कोर्स पढ़ा रहे हैं अतः वे कोर्स की समाप्ति पर ही भारत लौट सकेंगे। इसके अतिरिक्त भारतीय विज्ञान संस्थान की परिषद् से परामर्श के पश्चात् ही नियुक्ति को स्वीकार कर पाएंगे। भारत सरकार ने धवन की वापसी तक इंतजार करने का निर्णय लिया और अंतरिम अवधि के लिए भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का कार्य संचालित करने के लिए एम.जी.के. मेनन को नियुक्त किया जो उस समय टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च के निदेशक तथा इलेक्ट्रानिक्स विभाग के सचिव थे। भारतीय विज्ञान संस्थान के प्रबंधतंत्र को धवन के भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन में कार्य करने पर कोई आपत्ति नहीं थी। फिर भी धवन भारतीय विज्ञान संस्थान को छोड़ना नहीं चाहते थे क्योंकि वे इसे बहुत चाहते थे। अतः धवन ने प्रधानमंत्री को सूचित किया कि सरकार का अंतरिक्ष कार्यक्रम की अध्यक्षता करने का प्रस्ताव उन्हें निम्न दो शर्तों पर ही स्वीकार होगा–

उन्हें भारतीय विज्ञान संस्थान के निदेशक पद पर कार्य करते रहने की अनुमति दी जाए तथा भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का मुख्यालय बंगलौर ले जाया जाए। भारत सरकार ने इन माँगों को स्वीकार कर लिया। परमाणु ऊर्जा आयोग की ही तरह एक अंतरिक्ष आयोग का गठन हुआ और 1 जून 1972 को एक पृथक अंतरिक्ष विभाग की स्थापना हुई। सितंबर 1972 में भारतीय अंतरिक्ष संगठन को इसके अंतर्गत लाया गया। सतीश धवन को अंतरिक्ष आयोग का अध्यक्ष, अंतरिक्ष विभाग का सचिव और इसरो का अध्यक्ष बनाया गया। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के मुख्यालय ने प्रारंभ में भारतीय विज्ञान संस्थान में कार्य की शुरुआत की जो बाद में बंगलौर के काम्पे गौड़ा मार्ग पर कावेरी भवन में स्थानान्तरित हो गया। वर्तमान में इसरो का मुख्यालय न्यू बेल मार्ग पर अंतरिक्ष भवन में स्थित है। धवन ने भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम को एक उत्कृष्ट प्रौद्योगिकी विकास संगठन में परिवर्तित कर दिया।

अपने वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र में योगदान के लिए उन्हें अनेक राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से बहुत से पुरस्कार मिले। 1977 में वे भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। वे कुछ चुनिंदा भारतीयों में से थे जो यू.एस. राष्ट्रीय इंजीनियरी अकादमी के लिए चुने गए थे। धवन को प्रदान किए गए अनेक पुरस्कारों में विशेष उल्लेखनीय इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार है। 1999 में दिए गए इस पुरस्कार के एक अंश का वाचन इस प्रकार किया गया–

"यह पुरस्कार हमारे सर्वोत्तम वैज्ञानिकों, शिक्षकों तथा राष्ट्र निर्माताओं में से एक प्रो0 सतीश धवन को दिया जाना सर्वथा उपयुक्त है जिन्होंने वैज्ञानिक शिक्षा, अनुसंधान नीति निर्धारण तथा क्रियान्वयन में बहुआयामी योगदान दिया और राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए विज्ञान के उपयोग के द्वारा गहराई से जुड़े रहे।" एक प्रकार से यह धवन के व्यक्तित्व के सारतत्व को व्यक्त करता है।

3 जनवरी 2002 को प्रो0 धवन का निधन हो गया। हम इस लेख की समाप्ति प्रो0 धवन के प्रति अमल्या के.एन. रेड्डी के उद्गार द्वारा करना चाहेंगे– "सतीश धवन विज्ञान और मानवीय मूल्यों की साकार मूर्ति थे। यह उनकी मानवता ही थी कि जिसने उन्हें आमजन से ऊपर उठाया और लघु में विशाल तथा मानवों में युवराज बनाया। जहाँ एक इंजीनियर और कारीगर के रूप में उनकी प्रतिभा प्रकृति का वरदान थी, उनके मानवीय मूल्य प्रतिस्पर्धा के लिए हमारी पहुँच के भीतर हैं। यदि हम ऐसा कर सके तो यह हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।"

प्रधान वैज्ञानिक अधिकारी
विज्ञान प्रसार
सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया
नई दिल्ली–110016

–अनुवाद : देवव्रत द्विवेदी

क्वार्ट्ज और परमाणु घड़ियाँ

✍डॉ के..एन. उत्तम

आज जब हम नैनो प्रौद्योगिकी, लेसर प्रौद्योगिकी, संचार प्रौद्योगिकी, सूचना प्रौद्योगिकी एवं जैव रासानिक चिकित्सा की बात करते हैं, तब समय की शुद्धता की बात उठती है और यह आवश्यक हो जाता है कि कौन सी घड़ियाँ शुद्ध समय बताती हैं– यांत्रिक घड़ियाँ, क्वार्ट्ज घड़ियाँ या परमाणु घड़ियाँ ? अंतरिक्ष विज्ञान में हो रहे नित नवीनतम शोध महासागर में छिपे रहस्यों की खोज, पृथ्वी के वायुमंडल में हो रहे नए पर्यावरणीय परिवर्तन, औद्योगिक विकास के नाम पर उजाड़े जा रहे वन क्षेत्रों से उत्पन्न मौसम परिवर्तन– इन सबके लिए समय की शुद्धता का महत्व है। वर्तमान में मनुष्य का जीवन पूर्णरूप से कम्प्यूटर से प्रभावित है। इससे भी आगे सूचना प्रौद्योगिकी में नित नए आविष्कारों की क्रांतियाँ हो रही हैं। जीन इंजीनियरिंग की दुनिया में हो रहे अतिसूक्ष्म परिवर्तनों की गणना हेतु शुद्ध समयमापन अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान में क्वांटम कम्प्यूटिंग एवं बायोइन्फार्मेटिक्स का जमाना है। प्राकृतिक जगत में बहुत से कार्य नैनोसेकण्ड से लेकर सेकण्ड के किसी अंश में घटित हो जाते हैं। साथ ही साथ, प्राकृतिक आपदा नियंत्रण प्रणालियों के सफल संचालन के लिए समय को अतिशुद्ध रूप से मापना जरूरी है। क्या आज यह जान लेना पर्याप्त है कि कौन सा वर्ष, महीना या दिन चल रहा है या सिर्फ मौसम की जानकारी यथा जाड़ा, गर्मी अथवा बरसात ? या बाजार में उपलब्ध अनेक प्रकार की घड़ियों में कौन सर्वश्रेष्ठ है और क्यों ? हम यह कह सकते हैं कि प्रौद्योगिकी की बढ़ती माँग के अनुसार हर कार्य समय की शुद्धता की कसौटी पर निर्भर है।

प्राचीन काल में समय मापने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार की युक्तियाँ और यंत्र प्रयोग में लाए जाते रहे हैं। समय मापन के इतिहास में न जाकर इतना ही कहना उपयुक्त होगा कि समय के मापन में घड़ियों का विशेष योगदान रहा है। प्रौद्योगिकी के परिवर्तन के साथ साथ कई प्रकार की घड़ियाँ बाजार में आईं– जैसे सूर्य घड़ियाँ, जल घड़ियाँ, यांत्रिक घड़ियाँ, क्वार्ट्ज घड़ियाँ एवं परमाणु घड़ियाँ। वर्तमान में नवीनतम प्रौद्योगिकी से युक्त अच्छी, शुद्ध समय देने वाली घड़ियाँ हैं क्वार्ट्ज और परमाणु घड़ियाँ। आइए, समय मापन में क्वार्ट्ज और परमाणु घड़ियों के बारे में जानने की चेष्टा करते हैं।

गैलीलियो गैलीली को सन् 1582 में पेन्डुलम की खोज का श्रेय दिया जाता है। गैलीलियो की मृत्यु के पश्चात् सन् 1656 में डच वैज्ञानिक क्रिश्चियम हाईगेन्स ने सर्वप्रथम प्राकृतिक दोलन के आवर्तकाल का उपयोग कर प्रथम पेण्डुलम घड़ी का निर्माण किया। हाईगेन्स द्वारा आविष्कृत घड़ी एक दिन में एक मिनट कम समय मापती थी जो उन दिनों समय मापन की दिशा में एक महत्वपूर्ण विकास माना गया। बाद के दिनों में प्रौद्योगिकी उन्नति के साथ यह शुद्धता एक दिन में दस सेकण्ड तक पहुँच गई। हाईगेन्स ने सन् 1657 में 'बैलेन्स व्हील एवं स्प्रिंग एसेम्बली' का विकास किया जिसका आज भी यांत्रिक कलाई घड़ियों में

उपयोग किया जाता है। सन् 1721 में जार्ज ग्राहम ने पेण्डुलम की लम्बाई में परिवर्तन को तापमान में परिवर्तन के द्वारा प्रतिपूर्ति कर समय की शुद्धता मापन को एक दिन में एक सेकण्ड तक पहुँचा दिया। यह प्रौद्योगिकी कालान्तर में और विकसित होती गई और मापन में शुद्धता सेकण्ड के सौवें भाग तक पहुँच गई। इस पेण्डुलम घड़ी का उपयोग खगोल विज्ञान की वेधशालाओं में समय मापन के लिए किया जाने लगा।

क्वार्ट्ज क्या है ?

क्वार्ट्ज घड़ियों का नाम सुनते ही क्वार्ट्ज के बारे में जानने की जिज्ञासा होती है। प्रकृति में क्वार्ट्ज कई रूपों में पाया जाता है। क्वार्ट्ज का प्रयोग विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में प्राचीन काल से होता रहा है। मिलर नामक वैज्ञानिक, जो प्रकाश के उपकरण बनाने में पारंगत था, सन् 1923 में प्रकाशिक उपकरणों का व्यवसाय छोड़कर क्वार्ट्ज के व्यवसाय से जुड़ गया। क्वार्ट्ज क्रिस्टल प्रायः क्रिस्टल नियंत्रित दोलित्र, फिल्टर एवं क्रिस्टल घड़ी दोलित्र में प्रयोग किए जाते हैं। इसके साथ साथ क्वार्ट्ज का उपयोग आवृत्ति नियंत्रित उत्पाद, ओवरटोन क्रिस्टल दोलित्र, विभव नियंत्रित क्रिस्टल दोलित्र, घड़ी दोलित्र, रेडियो प्रसारण एवं संचार के उपकरण बनाने में किया जाता है।

क्वार्ट्ज का रासायनिक सूत्र (SiO_2) सिलिकान डाइ आक्साइड है। जब सिलिकान एवं सिलिकन डाइ आक्साइड के मिश्रण को निर्वात में गरम किया जाता है तो सिलिकन डाइ आक्साइड का फाइबर रूप प्राप्त होता है। क्वार्ट्ज पर सामान्य ताप पर क्लोरीन, ब्रोमीन, हाइड्रोजन एवं अधिकांश अम्लों का कोई प्रभाव नहीं होता है परन्तु फ्लोरिक अम्ल एवं क्षार से क्वार्ट्ज प्रभावित होता है। क्वार्ट्ज क्रिस्टल की संरचना एक त्रिफलीय निकाय में एक षट्कोणीय प्रिज्म की तरह होती है जिसके दोनों किनारों पर समानान्तर षडकोणीय वर्ग होता है। षट्कोणीय प्रिज्म के विपरीत शीर्षों को मिलाने वाले तीन अक्षों को दाब विद्युत अक्ष तथा षडकोणीय प्रिज्म की सतह के लम्बवत् तीन अक्षों को यांत्रिक अक्ष कहते हैं।

क्वार्ट्ज घड़ी का चलना

क्वार्ट्ज घड़ी का चलना क्वार्ट्ज क्रिस्टल के दाब विद्युत गुण पर आधारित है। जब क्वार्ट्ज में विद्युत क्षेत्र लगाया जाता है तब क्रिस्टल की आकृति में परिवर्तन हो जाता है अथवा जब हम क्रिस्टल को दबाते हैं या झुकाते हैं तो विद्युत क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। जब इस क्रिस्टल को किसी इलेक्ट्रानिक परिपथ में प्रयोग में लाते हैं तो यांत्रिक प्रतिबल और विद्युत क्षेत्र की पारस्परिक क्रिया के कारण क्रिस्टल में यांत्रिक कम्पन्न होने लगते हैं जिसके फलस्वरूप स्थिर वैद्युत संकेत उत्पन्न हो जाते हैं जो इलेक्ट्रानिक घड़ी प्रदर्शन के लिए प्रयोग में लाए जा सकते हैं। क्वार्ट्ज क्रिस्टल के साथ प्रकाश उत्सर्जन डायोड का उपयोग करके प्रथम कलाई घड़ी का वृहद् उत्पादन किया गया। सन् 1976 में डायोड के स्थान पर 'लिक्विड क्रिस्टल डिस्प्ले' का उपयोग किया गया। अपनी शुद्धता एवं सार्वजनिक प्रदर्शन के विश्वास के कारण क्वार्ट्ज घड़ियों ने पूरे बाजार में कब्जा कर लिया है। क्वार्ट्ज घड़ियों का वृहद् उत्पादन सस्ता पड़ता है। एक रिपोर्ट के अनुसार समय नामक कम्पनी ने एक वर्ष में 60 से ज्यादा माडलों की घड़ियाँ बाजार में उपलब्ध कराकर 57,07,777 क्वार्ट्ज घड़ियों का रिकार्ड उत्पादन किया है और एक ही वर्ष में सात सम्मानित राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किए हैं।

परमाणु घड़ियाँ

वर्तमान में परमाणु घड़ियों की समय मापन शुद्धता क्वार्ट्ज घड़ियों से आगे निकल गई है। प्रत्येक रासायनिक तत्व या यौगिक अपने अभिलाक्षणिक विकिरणों का अवशोषण एवं उत्सर्जन करता है। स्पेक्ट्रोस्कोपी की सहायता से इन विकिरणों की आवृत्तियों का मान शुद्धतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है। रडार के विकास एवं बाद में सन् 1930 से 1940 के मध्य उच्च आवृत्ति के रेडियो संचार के प्रयोगों से विद्युत चुम्बकीय विकिरणों के बारे में अत्यधिक महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हुए हैं। इन उच्च आवृत्ति की तरंगों को 'अतिसूक्ष्म तरंगें या 'माइक्रोवेव' कहा जाता है और

प्रयोगों द्वारा यह पाया गया कि अतिसूक्ष्म तरंगें परमाणुओं से पारस्परिक क्रिया करती हैं। हेराल्ड ल्वायन और उनके साथियों ने क्वार्ट्ज क्रिस्टल दोलित्र के साथ विश्व की प्रथम परमाणु घड़ी का निर्माण किया। प्रथम दृष्टि में परमाणु घड़ियों का विकास रासायनिक अमोनिया और उनके परमाणुओं के माइक्रोवेव अनुनाद पर प्रकाश डालता है। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ स्टैंडर्ड्स एण्ड टेक्नोलॉजी ने सन् 1957 में सीजियम परमाणु पुंज पर शृंखलाबद्ध परीक्षण पूरे किए और सन् 1960 में अंतिम रूप से सीजियम समय मानक के रूप में स्थापित किया। वर्तमान सीजियम में परमाणुओं की अनुनाद आवृत्ति के 9,192,631,770 साइकिल अथवा 9,192,631,770 दोलन के आवर्तकाल को एक सेकण्ड कहते हैं। सीजियम की शुद्धता एक वर्ष में एक सेकण्ड के करोड़वें भाग तक है। यह समय शुद्धता खगोलीय पिण्डों से लेकर परमाणु आवृत्तियों तक विद्यमान रहती है।

आधुनिक जीवन का अधिकांश भाग इस प्रकार के अतिशुद्ध समय मापन पर निर्भर है। यातायात, संचार, उत्पादन, विद्युत शक्ति और अनेकों अन्य प्रौद्योगिकियों की उन्नति अति परिशुद्ध घड़ियों पर निर्भर करती है। वैज्ञानिक शोध और आधुनिक प्रौद्योगिकी की मांग के अनुसार इससे भी शुद्ध घड़ियों की खोज जारी है। अब वह दिन दूर नहीं जब हम इससे भी अच्छी घड़ियाँ प्राप्त कर सकेंगे। सीजियम नामक मानक की द्वितीय पीढ़ी की घड़ियों के विकास पर वर्तमान में बोल्डर प्रयोगशाला के साथ साथ विश्व की अन्य प्रयोगशालाओं में शोधकार्य चल रहा है।

प्राध्यापक, भौतिकी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

डॉ0 विष्णुदत्त शर्मा की नई कृतियाँ

शोध प्रकाशन अकादमी, 5/48, वैशाली, गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश) से डॉ० शर्मा की दो नई कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं– 1. अनुरोधनामा तथा 2. गजल–ए–फुरकान। अनुरोधनामा एक मौलिक कृति है– एक नया प्रयोग जिसमें डॉ० शर्मा ने अपने जीवनचरित्र को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया है। इस भारी भरकम पुस्तक को पढ़कर डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखित 'अनामदास का पोथा' का स्मरण हो आया। डॉ० शर्मा ने अपनी कृति को वैज्ञानिक स्वरूप देने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

दूसरी कृति डॉ० शर्मा की सम्पादन–क्षमता की गवाही देती है। अपने गुरु श्री गंगा प्रसाद पचौरी 'फुरकान' की गज़लों को सम्पादित करते हुए पाद–टिप्पणियों में कठिन उर्दू शब्दों के जो अर्थ दिए गए हैं वे डॉ० शर्मा के भाषा–ज्ञान के साक्षी हैं। बधाइयाँ !

ट्रांसजेनिक फसलें : सेहत का खजाना

✍डॉ. अजय कुमार

बढ़ती हुई जनसंख्या का भरण पोषण के लिए आजादी के बाद साठ के दशक में हुई 'हरित क्रान्ति' अब बौनी साबित होने लगी है। मई सन् 2000 का महीना जनसंख्या के सौ करोड़ के आँकड़े को पार करने के लिए हमेशा याद किया जाता रहेगा। यदि जनसंख्या की यही रफ्तार रही तो सन् 2050 तक हम दो सौ करोड़ के आँकड़े को पार कर जाएंगे। इतनी बड़ी जनसंख्या के भरण पोषण के लिए हमें कृषि में फिर से नई क्रान्ति लाने की आवश्यकता होगी जो पौधों के डीएनए के अदृश्य अणुओं में आणविक सर्जरी के जरिए आनुवांशिकी परिवर्तन से ट्रांसजेनिक किस्में पैदा करके लाई जा रही हैं। ये ऐसे पौधे होते हैं जिनमें बैक्टीरिया और वाइरस से लड़ने की शक्ति होती है और फसलों को बाहर से किसी रसायन या छिड़काव की जरूरत नहीं रहती है। वैज्ञानिक भाषा में ऐसी फसलों को **जेनेटिकली माडीफाइड (जीएम)** और ऐसे पौधों को **ट्रांसजेनिक पौधे** कहते हैं। वर्तमान में फसल की उत्पादकता बढ़ाना जितना महत्वपूर्ण है, उससे कहीं ज्यादा जरूरी है फसल सुरक्षा। हमारे देश में सब्जियों और फसलों की 20–30 प्रतिशत हानि कीटों, जीवाणुओं और विषाणुओं द्वारा होती है। हर साल ये करीब 6000 करोड़ रुपये कीमत की फसलें चट कर जाते हैं।

पौधों पर सभी प्रकार के जीवों (जीवाणु, विषाणु तथा कवक) तथा पशुओं का आक्रमण होता है, किन्तु कृषि को सबसे ज्यादा नुकसान कीटों द्वारा होता है। कीड़े केवल पौधों को ही नहीं खाते, कभी कभी ये जीवाणुओं को अपना लक्ष्य बनाते हैं जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप कई जीवाणुओं को कीटों के विरुद्ध सुरक्षा प्रणाली विकसित करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ बैसिलस थुरिजिएन्सिस (बी0टी0) जो स्पोरुलन के समय अन्तरकोशिकीय क्रिस्टलीय पिंड उत्पन्न करता है जिसमें कीटनाशी प्रोटीन रहता है जिसे डेल्टा एण्डोटाक्सिन कहते हैं। यह सक्रिय प्रोटीन कीटों के लिए आर्गेनोफास्फेट कीटनाशियों की तुलना में 80 हजार गुना अधिक विषाक्त होता है। इस जीवाणु (बी0टी0) के विभिन्न प्रकार, ऐसे प्रोटीनों का संश्लेषण करते हैं जो विभिन्न समूहों के कीटों के लार्वो के विरुद्ध अत्यन्त प्रभावशाली पाए गए हैं।

इस जीवाणु में संचित होने वाला डेल्टा एण्डोटाक्सिन वस्तुतः अक्रिय होता है किन्तु जब कोई कीट इस प्रोटाक्सिन को खा लेता है तो प्रोटीनेजों के द्वारा कीटाणु की आंत में ही यह छोटे प्रोटीन में बदल जाता है जो कीट के भीतर ही संलग्न होकर उसे क्षतिग्रस्त कर देता है जिससे कीट पौधों को खा नहीं पाता और भूखों मर जाता है।

सर्वप्रथम सीबा गीगी प्रयोगशाला (नार्थ कैरोलाइना) के जैव प्रौद्योगिकीविदों को मक्के के पौधे के भीतर डेल्टा एण्डोटाक्सिन उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त हुई। कई दलहनी फसलों से निकाले गए प्रोटीनेज दमनकारियों के जीनों को अन्य फसलों में स्थानान्तरित किया गया तो उनसे बीजों को क्षति पहुँचाने वाले भृंग लार्वो के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त की जा

सकी है।

अपने देश में कई अनुसंधानशालाओं में नियंत्रित प्रजनन प्रक्रिया के द्वारा जेनेटिकली माडीफाइड (जी0एम0) फसलें उत्पन्न की जा रही हैं। यूरोपीय और अमेरिकी अनुसंधानशालाओं में ट्रांसजेनिक प्रक्रिया के द्वारा फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए तरह तरह के प्रयोग किए जा रहे हैं। इस प्रक्रिया में कृत्रिम रूप से रोपित जीन (जिसे ट्रांसजीन कहते हैं) कभी उसी पौधे के वंश के ही अन्य पौधों से लिया जाता है तो कभी एकदम अलग प्रजाति के पौधे से।

किसी भी पौधे या जीव में दूसरे जीन को पहुँचा देना कोई सहज प्रक्रिया नहीं है। साथ ही यह भी जरूरी नहीं कि बाहरी जीन को हर कोई स्वीकार कर ही ले। पहले कई परीक्षणों से जाँच की जाती है तब कहीं जाकर जीन पहुँचाए जाते हैं। आनुवांशिक इंजीनियरों ने पहली बार एक अनोखी पद्धति 'पार्टिकल गन' का प्रयोग करके जीन को पर काया में पहुँचाया था।

पार्टीकल गन से जीनांतरण का सफल प्रयोग सबसे पहले सन् 1887 में डॉ0 जे.सी. सैनफोर्ड और डॉ0 थियोडोर एम. क्लीन ने कार्नेल यूनिवर्सिटी में किया। उन्होंने जो युक्ति ईजाद की उसे **पार्टिकल गन** कहते हैं। यह 22 कैलीबर के खाली कारतूस वाली गन होती है। इसमें डीएनए अर्थात् जीन को उन्होंने टंगस्टन धातु के बेहद बारीक कणों में लपेटकर वांछित पौधों की भ्रूण कोशिकाओं पर या फिर पत्ती आदि की कोशिकाओं में दागने के सफल प्रयोग किए। बाद में ये पराए जीनवाली यानी पराजीनी कोशिकाएँ परखनली में पनपाकर पूर्ण पौधों तक बढ़ाई जाती हैं और फिर गमलों में और अन्त में खेतों में उगाई जाती हैं। मिडिल्टन में स्थित एग्रीसीड्स कम्पनी के वैज्ञानिकों ने टंगस्टन के बजाय सोने के कणों का उपयोग किया। इन जीन गन में सोने के कण दागने की ताकत जलकणों के वाष्पीकरण से पैदा की जाती थी। जीन गनों से दागे गए धातुकण उनमें लिपटे बेहद बारीक छेद करके कोशिकाओं में पहुँचा देते हैं और कोशिका में बिना कोई छेड़छाड़ किए यों ही पड़े रहते हैं। जीन प्रवेश करा देने के बाद यह सुनिश्चित करना होता है कि जो पराया जीन डाला गया है वह उस रूपांतरित पौधे में अपना पूरा असर दिखाए यानी उस प्रोटीन को वास्तव में पराजीनी पौधों में पैदा करे, जिसे बनाने का संदेश जीन में डीएनए की भाषा में लिखा हुआ है। इसके लिए जीन को तैयार करना होता है। पहले तो उसमें उन्नायक अनुक्रम (प्रमोटर सीक्वेंस) डालना होता है यानी एक 'स्विच' डालना होता है जो 'आन' होकर जीन को असली क्रम, जिसमें डीएनए की कूट भाषा में कौन सा प्रोटीन बनता है लिखा होता है, जो प्रोटीन बनने के बाद जीन को 'आफ' कर दे। यह काटछांट और जोड़तोड़ विशिष्ट एंजाइमों की क्रिया से होती है।

21वीं सदी में कृषि विज्ञान में अब एक नया अध्याय जुड़ा है। यह है 'जीन पूल' का। अतः केवल एक पौधे के जीन समान कुल के पौधों में ही नहीं लगेंगे बल्कि जन्तु जगत को भी शामिल करने की बात चलने लगी है। उदाहरणार्थ, वैज्ञानिकों ने खाद्य फसलों में मछली के जीन डालकर उसकी प्रोटीन मात्रा बढ़ा दी है। आने वाले कल में शाकाहार और मांसाहार दोस्ती कर भूख से दो दो हाथ करेंगे। कल अगर बाजार में गेहूँ के आटे पर विज्ञापन लिखा होगा 'मछली प्रोटीन युक्त चपाती खाइए' या 'घर की दाल मुर्गी बराबर' 'दाल की दाल और मुर्गी की मुर्गी' तो चौंकिए नहीं। यही 'जीन पूल' है।

आज दुनिया भर में 60 से अधिक पराजीनी किस्में विकसित कर ली गई हैं। अकेले अमेरिका में ही पराजीनी किस्मों का फसल क्षेत्र 500 लाख एकड़ का आँकड़ा छू रहा है। चीन इस मामले में सबसे आगे है। इन फसलों के प्राप्त होने वाले उत्पाद पश्चिमी देशों के कृषि उद्योग के बटुए में लगभग तीन अरब डालर की राशि पहुँचा रहे हैं। पराजीनी फसलों के पंडितों का कहना है कि ऐसी फसलों की लोकप्रियता को देखते हुए बटुआ बड़ा करना पड़ेगा क्योंकि अगले दस सालों में यह कमाई 25 अरब करोड़ रुपये पहुँच जाएगी।

पिछले दिनों कैलिफोर्निया के कुछ वैज्ञानिकों

ने बर्फीले पानी में सहज जीवन बिताने वाली एक मछली 'विंटर फ्लाउंडर' के शरीर का अध्ययन करके उसका वह जीन ढूँढ निकाला जो उसे जमाव बिन्दु पर भी सहज बनाता है। इस जीन को बाहर निकाल वैज्ञानिकों ने उसे टमाटर के पौधे में डाल दिया। इससे टमाटर के पौधे में अत्यंत ठंडे ताप पर उगने की शक्ति आ गई। परीक्षणों में तो यहाँ तक पाया गया कि उसकी पौष्टिकता भी अपेक्षाकृत बढ़ गई। लगभग ऐसा ही कमाल भारतीय वैज्ञानिक आर0पी0 शर्मा और उनकी टोली ने किया। उन्होंने जेली फिश की देह में समाई जीन की बधिया उधेड़ी और उसका चमक करने वाला जीन बाहर निकाला, उसे अरहर के पौधे में डाल दिया। जीन ने अरहर की कोशिका में पहुँचते ही चमक दिखाई, इससे यह बात सहज ही पता चली कि पौधे में परिपक्तवा कब आएगी।

पराजीनी पद्धति के सहारे सुपर फसलें बनाने में सहायता मिलेगी। यह करिश्मा कर दिखाया है जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिक ने। यहाँ के कुलपति डॉ0 आशीष दत्त और उनके सहयोगियों ने रामदाने में से प्रोटीन वाला जीन निकाला और उसे आलू में पहुँचा दिया। ज्ञात हो कि रामदाना जंगली खाद्य पदार्थ है और प्रोटीन की मात्रा इसमें अपेक्षाकृत अधिक है। आलू में रामदाने का यह प्रोटीन जीन पहुँचकर उसे सुपर आलू बना देता है।

आने वाले दिनों में फलों की पौष्टिकता का स्तर खुद पौधे ही बताएंगे। इसका एक रोचक उदाहरण ब्रिटेन के कृषिवैज्ञानिकों ने पेश किया। हुआ यूँ कि जेली फिश के शरीर से नीली रोशनी पैदा करने वाला एक जीन निकाला गया और उसको आलू व तम्बाकू के पौधे में पहुँचा दिया गया। परीक्षणों के दौरान यह पाया गया कि जब इन पौधों में खाद–पानी की कमी हुई तो पौधों से नीली रोशनी छन कर आने लगी। आने वाले समय में अब उपेक्षित फसलें जैसे ज्वार, बाजरा भी लोकप्रिय होने लगेंगी।

वनसपति जगत की इस क्रान्ति के लिए जंतु जगत की तरफ भी देखना होगा। वैज्ञानिकों का कहना है कि जन्तु जगत में कितने ही जीव ऐसे हैं जिन्हें मानव किसी भी रूप में प्रयोग नहीं करता है। जैसे कीट–पतंगों का बहुत बड़ा समुदाय जो प्रोटीन–बहुल है मगर नुकसानदायक है। अगर शोध के माध्यम से इनके प्रोटीन और अन्य पौष्टिक गुणों के जीन निकाल कर खाद्य फसलों में पहुँचा दिए जाएँ तो उनके पौष्टिकगुण अपने आप बढ़ जाएँगे।

शाकाहार एवं मांसाहार की घालमेल से बचने के लिए कृषिवैज्ञानिकों ने 'मार्कर' का सहारा लेने की सोची है। जो खाद्य फसलें जंतु जगत से मिलकर बनेंगी उसमें चमक जैसा कोई मार्कर डाला जाएगा।

आने वाले समय में रोगों के इलाज के लिए पराजीनी फसलों का प्रयोग किया जाएगा। वैज्ञानिकों ने तम्बाकू के पौधों में सक्रिय एंटीबाडी बना कर दिखा दिया जो हमारे शरीर में रोगों से लड़ने की क्षमता पैदा करता है। इसे वैज्ञानिकों ने 'प्लांटीबाडी' नाम दिया है। सन् 1983 में कालजीन नामक एक अमेरिकी कम्पनी के वैज्ञानिक द्वारा कुछ खाद्यान्न फसलों में शाकनिरोधकता प्राप्त करने में सफलता मिली। यह जिस जीन का कमाल था उसे टमाटर, सोयाबीन तथा कुछ अन्य फसलों में डाला गया। इसी दौरान एथिलीन रसायन पैदा करने वाले जीन पर काबू पाया गया। इससे टमाटर देर तक कच्चा बना रहा। इसी सफलता से प्रोत्साहित होकर वैज्ञानिकों ने केले में हैजे का टीका बनाने वाला जीन पहुँचा दिया। अब हैजा होने की स्थिति में केवल केला खिला देने से बीमारी का निदान होगा। इसी सफलता पर शोध जारी रखते हुए वैज्ञानिकों ने शरीर में रोगों से लड़ने वाली जीन 'इंटरफेरान' को अलग कर इसे शलजम में पहुँचा दिया। अब नई पराजीनी शलजमों में रोगों से लड़ने की अतिरिक्त क्षमता होगी। कुछ अमेरिकी वैज्ञानिकों ने तोरिया के पौधे में ऐसा जीन डाला है जो मानब मस्तिष्क में होने वाले दर्द पर सहज काबू पाता है। इसी तरह कैलिफोर्निया की एक दवानिर्माता कम्पनी ने तम्बाकू के पौधों में जीनियागिरी कर त्वचा को रंग देने वाले रंजक मेलैनिन पैदा कर दिखाया है। यह मनुष्य की बदरंग होती त्वचा

को सहज बनाएंगे। वैज्ञानिकों का दावा है कि खाद्य पौधों में रोगों से लड़ने वाले जीन पहुँचा कर स्वास्थ्य की ओर जल्द कदम रखा जाएगा। शोध के अनुसार आने वाले समय में एक लाख से भी अधिक जीन समूह हमारे शरीर में रोगों के लिए उत्तरदायी होगा और उसका तोड़ खाद्य फसलों में पैदा किया जाएगा।

आने वाले समय में जब कोई भी बाजार से सब्जी, दाल, फल या अनाज खरीदने जाएगा तो पराजीनी खाद्य का वितरण पढ़ना जरूरी होगा। जानना होगा कि खाद्य किस रोग से निजात दिलाएगा, किस उम्र में कौन सा भोजन लाभकारी होगा या फिर बच्चों को किस रोग से लड़ने के लिए टीके लगवाने के बजाए पराजीनी केला, संतरा, टमाटर, गाजर आदि ही खिला देना काफी होगा। तब न हेपेटाइटिस के टीके की जरूरत होगी, न टाइफाइड, न खसरे एवं किसी अन्य रोग के इंजेक्शन की। कल का आहार पेट भी भरेगा एवं रोग से भी लड़ेगा।

वरिष्ठ प्रयोगशाला अधिकारी
जैव उर्वरक उत्पाद इकाई
कोरडेट, इफको फूलपुर, इलाहाबाद

विज्ञान परिषद् द्वारा डॉ० पृथ्वीनाथ पाण्डेय का सम्मान

राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के अवसर पर 28-2-2002 को विज्ञान परिषद् प्रयाग ने जाने माने बाल विज्ञान लेखक पृथ्वीनाथ पाण्डेय को उनकी सेवाओं के लए 'विज्ञान प्रदीप' सम्मान से अभिनन्दित किया। ज्ञात हो कि विगत 50 वर्षों में प्रयाग में तीन प्रसिद्ध बाल विज्ञान लेखक हुए हैं– श्री जगपति चतुर्वेदी, श्री शुकदेव प्रसाद तथा डॉ० पृथ्वीनाथ पाण्डेय। इन तीनों ने अपने अपने स्तर पर बच्चों के लिए उपयोगी विज्ञान पुस्तकें लिखी हैं। दिल्ली भी बाल विज्ञान लेखकों का केन्द्र रही है। सम्प्रति डॉ० हरिकृष्ण देवसरे तथा श्री जयप्रकाश भारती की ध्वजा फहरा रही है। आवश्यकता है कि इन सभी बाल विज्ञान लेखकों की कृतियों का यथाशीघ्र मूल्यांकन किया जाता जिससे बाल विज्ञान लेखन की भावी दिशा का निर्धारण सुगम हो जाता। हाल के वर्षों में सूचना प्रौद्योगिकी और जैव प्रौद्योगिकी ने जो युगान्तर ला दिया है उसमें बच्चों को कितना और कैसा विज्ञान परोसा जाए, यह तय करना आवश्यक हो गया है। यदि सम्भव हो तो इस दिशा में अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन किया जाए। अब केवल लेखक की इच्छा पर लेखन कार्य नहीं छोड़ा जा सकता।

बाल विज्ञान विषयक पत्रिकाओं का प्रारम्भ से टोटा रहा है। भोपाल से प्रकाशित 'चकमक' तथा 'स्रोत' ऐसी पत्रिकाएँ हैं जो बालगोपालों के लिए उपयोगी है। 'शैक्षिक सन्दर्भ' हाईस्कूल तक के छात्रों के लिए उपयोगी अन्य पत्रिका है। यह भी विचार करना होगा कि क्या कोई बाल विज्ञान पत्रिका नहीं प्रकाशित की जा सकती ? डॉ० ओम प्रकाश शर्मा ने गाजियाबाद से 'विज्ञान आपके लिए' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू तो किया है किन्तु उसमें अभी वरिष्ठ लेखक लेख लिख नहीं रहे हैं।

– सम्पादक

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन कृषि के लिए वरदान

✍ हेमलता पन्त

विश्व की 80 प्रतिशत जनसंख्या आज विकासशील देशों में रहती है। इन विकासोन्मुख देशों की जन्म दर अधिक होने के कारण जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। दूसरी ओर अपर्याप्त भूमि संसाधन के कारण प्रति एकड़ कृषि से खाद्यान्न उत्पादन बहुत सीमित है अतः उन्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विकसित देशों पर आश्रित रहना पड़ता है।

कीट, व्याधियों तथा अन्य जैविक बाधाओं की बढ़ती संख्या एवं दबाव के कारण पैदावार को 20–25 प्रतिशत की क्षति पहुँचती है। कीटाणुओं के प्रकोप से फसलों की रक्षा करने में कृत्रिम कीटनाशकों की भूमिका हमेशा से महत्वपूर्ण रही है लेकिन इसके अनियंत्रित प्रयोग से वातावरण एवं जीव–जन्तु इस हद तक प्रभावित हुए हैं कि आज प्रत्येक देश इनके उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा रहा है। इनके निरन्तर प्रयोग से भूमि, जल, वायु, आहार आदि में प्रदूषण की बढ़ोतरी हुई है तथा जैविक संतुलन भी बिगड़ रहा है। ऐसी स्थिति में कीट एवं व्याधियों को कम करने के लिए नियंत्रण के ऐसे तरीके ढूँढने की आवश्यकता है जो मानव समुदाय एवं वातावरण को हानिकारक प्रभावों से मुक्त रख सके। **एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन** एक ऐसी ही विधा है जिसमें कीट एवं व्याधियों को रोकने के लिए समस्त रोग निवारण विधियों का प्रयोग किया जाता है। जैसे– फसलों की प्रतिरोधी क्षमता का उपयोग, अन्य समायोजन, यांत्रिक, जैविक एवं अन्त में रासायनिक विधियों का प्रयोग।

एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन (आई0पी0एम0) का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक एवं मिलीजुली विधि द्वारा नाशीजीव का नियंत्रण है। इसमें कीटनाशी रसायनों का कम से कम प्रयोग करके अवरुद्ध कृषि उत्पादन में वृद्धि लाई जाती है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जाता है। वे हैं–

1. जैविक नियंत्रण : कृत्रिम कीटनाशकों के दुष्परिणाम को देखते हुए पौधों की रक्षा के लिए वैकल्पिक उपायों में से वैज्ञानिकों ने प्राकृतिक उत्पाद (जो कीट व व्याधियों के खिलाफ प्रयोग में लाए जाते हैं) के साथ साथ जीवित कारक (जैसे– जीवाणु, विषाणु, फफूँदी, प्रोटोजोआ, परभक्षी, परजीवी, निमाटोड इत्यादि) द्वारा कीटों एवं व्याधियों का नियंत्रण किया जाता है। नींबू के स्केल कीट का बैडेलिया भृंग द्वारा, चना कली का वेधक कैम्पोलेटिस क्लोरीडी एवं ट्राइकोग्राना बेजेयोन्सिस द्वारा एवं गन्ना छेदक का ट्राइकोग्रामा फैसिएटम द्वारा नियंत्रण इसके उदाहरण हैं। बैसिलस प्रजाति के जीवाणुओं को लेपिडोप्टेरा एवं कोलियोप्टेरा वर्ग के कीटों के विरुद्ध प्रयुक्त किया जा रहा है। इन जीवाणुओं को विभिन्न प्रकार की पैकिंग में बन्द कर बेचा भी जाता है। जैसे बम्थेन, एल–69, पैरापोरिन, थ्यूरोसाइड, स्पोरीन, डाइपेल एवं बायोस्पोर। ये जीवाणु निश्चित कीट को ही नुकसान पहुँचाने के कारण लोकप्रिय हो रहे हैं। विषाणुओं का भी लेपिडोप्टेरा वर्ग के कीट पर काफी बड़े पैमाने पर प्रयोग हो रहा है। उदाहरणस्वरूप एन0पी0वी0 (न्यूक्लियर पॉलिहाइड्रेसिस विषाणु) ग्रैनुलोसिस विषाणु एवं कोशिका द्रवीय विषाणु।

आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण फसलों के लिए

कैंडिडेट जैव नियंत्रक कर्मकों, बैकुलोविषाणु, परजीवियों, परभक्षियों, विरोधी फफूँदी और जीवाणुओं के बहु उत्पादन के लिए प्रौद्योगिकियाँ विभिन्न उद्योगों में स्थानान्तरित की गई हैं। महत्वपूर्ण फसलों में कपास, कॉफी, दालें, तेलबीज, मसाले, गन्ना, चाय और सब्जियाँ शामिल हैं। जैव नियंत्रक / जैव कीटनाशी क्षमता प्रदर्शन के अन्तर्गत लगभग 65 हजार हेक्टेयर क्षेत्र शामिल किया गया है। विभिन्न कृषि जलवायु में 12 कैंडिडेट जैव कीटनाशकों का प्रयोग किया गया है। सिंचित स्थिति में कपास के लिए एकीकृत जीवनाशी प्रबंधन माड्यूल का विकास किया गया है। तीन फफूँदी जैव नियंत्रक कर्मकों की किण्वन आधारित प्रौद्योगिकियों का विकास किया गया है और उन्हें उद्योग को स्थानान्तरित कर दिया गया है। वर्तमान में देश के 22 राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों में 25 केन्द्रीय एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन केन्द्र कार्यरत हैं

उपरोक्त जीवित कारकों के साथ साथ किसानों के लिए सबसे सरल, सस्ता एवं अच्छा तरीका जो आजकल ज्यादा प्रचलित है तथा रोगों, कीटों के निदान तथा मृदागठन (स्वायल टेक्सचर) एवं खेतों की उर्वरता बनाए रखने में सहायक है वह है मृदा का कार्बनिक संशोधन। मृदा में कार्बनिक पदार्थों के विघटन से अनेक विषैले पदार्थ जैसे– वसीय अम्ल आदि उत्पन्न होते हैं। ये पदार्थ मृदा में उपस्थित रोगजनक जीवों का दमन करते हैं या उन्हें मार देते हैं। मृदा संशोधन के रूप में विभिन्न पदार्थ जैसे हरी खाद, शुष्क एवं हरे सस्यावशेष, लकड़ी का बुरादा, गोबर की खाद, गोबर गैस से निकले अवशेष, नीम, महुआ, तिल, सरसों की खली इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। ये पदार्थ मृदागठन एवं उर्वरता में परिवर्तन करने के साथ साथ जड़ों व पौधों के विकास में सहायक होते हैं। इस कारण से पौधों की रोगी मृत जड़ों के स्थान पर नई जड़ें निकलने लगती हैं और हानि अपेक्षाकृत घट जाती है। मृदा में अधिक मात्रा में कार्बनिक पदार्थ जोत देने से अरहर के म्लानि रोग के रोगजनक का दमन किया जाता है और निमाटोडभक्षी कवकों की वृद्धि भी अच्छी होती है।

2. सस्य समायोजन : सही समय पर विभिन्न सस्य क्रियाएँ अपनाने से कीटनाशी जीवों एवं व्याधियों की समस्याओं को काफी हद तक रोका जा सकता है। जैसे– गर्मी में खेतों की जुताई, समय से बुआई, बीज शोधन, मिश्रित फसल, समुचित जल प्रबंध, संतुलित मात्रा में खाद उर्वरक, रोग व कीटरोधी प्रजातियों का प्रयोग, खेतों की सफाई एवं स्वच्छता एवं उचित दूरी आदि का प्रयोग।

3. यांत्रिक नियंत्रण : इस विधि में प्रकाश प्रपंच (लाइट ट्रैप), गन्धपाश (फेरोमोन ट्रैप), चिड़ियों का आश्रय (बर्ड परचर), गर्म जल, शीत जल (गन्ने के विषाणु हेतु) का प्रयोग किया जाता है। इससे कीटों के अण्डे नष्ट होते हैं।

4. पादप संगरोध : नए क्षेत्रों में पादपनाशक जीवों एवं रोगों के बहिष्करण निरोध या स्थापित होने में विलम्ब के उद्देश्य से कृषि पदार्थों के लाने एवं ले जाने पर कानूनी प्रतिबन्ध लगाने को पादप संगरोध कहते हैं जो विभिन्न वैधानिक उपायों द्वारा कार्य करते हैं।

5. रासायनिक नियंत्रण : रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग सदैव होता रहा है लेकिन इनके प्रयोग से दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि यदि इन कीटनाशकों के साथ साथ प्राकृतिक उत्पादों का प्रयोग एक निश्चित मात्रा में किया जाए तो इनका प्रभाव पौधों पर अच्छा पड़ता है तथा पर्यावरण भी प्रदूषण से मुक्त रहता है। कीटनाशकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग के चलते उन प्राकृतिक तरीकों पर भी गाज गिरी है जो परम्परागत रूप से सदियों से कीड़े, मकोड़े व रोग, व्याधि से फसलों को बचाने के लिए प्रयोग किए जाते रहे हैं। मिट्टी, हवा, पानी और फसलों के मध्य जो निरापद अन्योन्याश्रित सम्बन्ध था रासानिक खेती ने उस पर वज्रपात किया है। इस पूरे कुचक्र से मित्र कीड़े नष्ट हो रहे हैं और पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता घट रही है। इसका असर मानव स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है इसलिए रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग संतुलित मात्रा में करना चाहिए।

एकीकृत नाशीजीव नियंत्रण विभिन्न नाशक जीव नियंत्रण प्रविधियों का समन्वित रूप है जिसका

शेष पृष्ठ 28 पर

रोगों के लिए जीवाणु जिम्मेदार नहीं

प्रो० आर.सी. गुप्ता

पिछले दिनों एंथ्रेक्स के जीवाणु की बड़ी चर्चा रही है। 11 सितम्बर 2001 के अमेरिका में हुए हमले के बाद इस बैक्टीरिया से अमेरिका में आजतक 7 लोगों की मृत्यु हो चुकी है और 90 लोग बीमार हो चुके हैं। इसका आतंक केवल अमेरिका में ही न होकर, पूरे विश्व में फैल चुका है। भारत में भी अनेक स्थानों से एंथ्रेक्स से भरे लिफाफे पहुँचने की सूचना है।

– सम्पादक

शायद बैक्टीरिया या वायरस का नाम लेते ही कँपकँपी छूट जाती है क्योंकि हम सब की सामान्यतया यह धारणा होती है कि ये जीवाणु रोग ही उत्पन्न करते हैं और इनका बढ़ना केवल बीमारी ही नहीं, महामारी का भी कारण हो सकता है। हमारे ग्रंथों में इसकी काफी चर्चा है। छूआछूत, स्नान, मंजन, शौच और लघुशंका के बाद तथा प्रसव के दिनों के नियम पूरी तरह से स्पष्ट बताए गए हैं और साथ ही क्या क्या सावधानी भी बरतनी है, यह हमारे पूर्वजों को अच्छी तरह ज्ञात था। इसीलिए इस पर विशद् ज्ञान का भी वर्णन मिलता है।

सर्वप्रथम 1683 में इन सूक्ष्मजीवाणुओं को एन्टोनी वान लुवेनहाक ने पहली बार देखा और उनके विवरण लिखे। पर उसके बाद लगभग 150–200 वर्षों तक सूक्ष्मजीवाणुओं और मनुष्य में हुए रोगों में कोई सम्बन्ध निश्चित न हो सका। पर इसके बाद इसी तरह के सूक्ष्मजीवों में जिस एक बैक्टीरिया को, 1876 में रॉबर्ट कॉख ने सबसे पहले पहचाना वह था आज मौत का दूत समझा जाने वाला एन्थ्रेक्स बैक्टीरिया। उन्होंने उसके आकार और व्यवहार की विशिष्ट रूप से पहचान की और उससे पैदा होने वाले रोगों का भी वर्णन किया। इसके बाद 1881 में लुई पाश्चर ने प्रमाणित किया कि एन्थ्रेक्स का टीका लगवाने के बाद भेड़, बकरी और गायों में एंथ्रेक्स के बैक्टीरिया का असर नहीं होता। शायद यह विश्व का पहला व्यावसायिक टीकाकारण था।

1840 में ओलिवर बैंडेल होम्स ने यह बताया कि प्रसव के बाद आने वाले बुखार का मुख्य कारण वहाँ की दाइयाँ, डाक्टर और चिकित्सा छात्र हैं जो प्रसव कक्ष में आने से पहले अपने हाथों को अच्छी तरह से धोते या साफ नहीं करते (उस समय चिकित्सा शास्त्र के छात्र शवदाह गृह में विच्छेदन के बाद ही प्रसूति कार्य में लग जाते थे)।

जब 1882 में राबर्ट कॉख ने तपेदिक के बैक्टीरिया को खोजा तो उसने स्वप्न सा देखा या सोचा कि उस सदी के अन्त (1900 ई0) तक तपेदिक पूरे रूप से समाप्त हो जाएगा पर 18 वर्ष तो क्या 118 वर्षों में भी हम तपेदिक को समाप्त नहीं कर पाए हैं। तपेदिक आज भी उतना ही जानलेवा है, कष्टकारक है, लम्बा खींचने वाला रोग है, जो केवल रोगी को ही नहीं, एक साधारण से भारतीय परिवार को आर्थिक रूप से नष्ट कर देता है। हमने रोग के जीवाणु को पहचान लिया है,

अच्छी से अच्छी दवा हमने ढूँढ निकाली है लेकिन क्या तपेदिक समाप्त हो गया ? नहीं। वह तो बढ़ रहा है। क्या राबर्ट कॉख का सपना पूरा हुआ ? क्या वह स्वप्न मृगतृष्णा बनकर नहीं रह गया।

इसी तरह 1929 में एलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने पेनिसिलीन नाम के एन्टीबायोटिक की खोज सबसे पहले की थी और उनकी यह खोज उनकी प्रयोगशाला में कुछ बैक्टीरिया के कल्चर के समय हुई। बैक्टीरिया के साथ साथ जीवाणु की एक और किस्म है– भुखड़ी या फफूँद। एक बार फ्लेमिंग ने देखा कि स्टेफाइलोकोकाई बैक्टीरिया का उत्पादन कुछ स्थानों पर समाप्त हो गया है क्योंकि वहाँ एक फफूँद उग आई है और वह फफूँद थी पेनिसिलीन नोटैटम नामक फफूँद। उसे चिन्ता ही नहीं आश्चर्य हुआ भी हुआ कि आखिर उस फफूँद ने क्योंकर बैक्टीरिया का बढ़ना ही नहीं रोका, उसे पूरी तरह से नष्ट भी कर दिया। फिर उसी फफूँद से पैदा किया गया पेनिसिलीन जो लगभग 30 वर्षों तक जीवाणुजनित रोगों में अचूक औषधि था।

शायद इस पत्रिका के पुराने पाठकों को याद होगा कि जब असहयोग आन्दोलन के जनक महात्मा गाँधी की पत्नी कस्तूरबा गाँधी पूना जेल में थीं तो इसी पेनिसिलीन के इंजेक्शनों द्वारा ही उनके रोग पर काबू पाया गया। घड़ी से हर 6 घंटे पर सुई लगती थी और उस समय उसकी एक सुई लगवाने की फीस थी 40 रुपये जो आज के हिसाब से 5000 रुपये होगी। धीरे धीरे पेनिसिलीन का प्रभाव कम ही नहीं होता गया, उससे मृत्यु तक होने लगी। अगर आज किसी डाक्टर से पेनिसिलीन का इन्जेक्शन लगाने को कहेंगे तो वह आपका मुँह देखने लगेगा क्योंकि वह जानता है कि यह अपने समय का रामबाण अब निष्प्रभावी ही नहीं, घातक भी हो गया है।

एक फफूँद ने जीवित बैक्टीरिया को क्योंकर और कैसे नष्ट किया था ? और यहीं से उत्पत्ति हुई ऐसी दवाइयों की जो एक जीवित का उपयोग दूसरे जीवित को नष्ट करने के काम आए अर्थात् ऐंटीबायोटिक (ऐंटी– अर्थात् विरुद्ध, बायो– जीवित या जीवन्त तथा इक्स– पदार्थ)। आज अनेक प्रकार के फफूँद या भुखड़ी से नए नए ऐंटीबायोटिक बनाए जा रहे हैं। पर क्या हम इनसे रोग पैदा करने वाले विषाणु या जीवाणु को रोक सकेंगे ?

बैक्टीरिया एवं वाइरस तो रहेंगे ही, क्योंकि वे भी सृष्टि या प्रकृति के अंग हैं। जब हम और आप अपने वैज्ञानिकों के साथ मिलकर उन्हें नष्ट करने या मार डालने का प्रयास करते हैं तो वे भी अपने बचाव के लिए नए नए तरीके ईजाद कर लेते हैं और फिर हमारे वैज्ञानिक ढूँढने लगते हैं इन नए परिवर्तित जीवाणुओं से निपटने के लिए नए उपचार। कौन नहीं जानता कि HIV (Human Immunodeficiency Virus) की खोज पहली बार केवल 17 वर्ष पूर्व हुई थी। इन 17 वर्षों में HIV नए नए प्रकारों में बँटता जा रहा है। HIV-1, HIV-2 और अब आ गया है HIV-3। तो क्या ये अलग अलग वाइरस हैं ? या फिर वे ही अपना रूप, आकार, क्षमता बढ़ाते घटाते जाते हैं। क्या केवल इतना सही नहीं हैं कि आप जब उन्हें मारेंगे, नष्ट करने का प्रयत्न करेंगे तो वे भी अपना स्वरूप बदल लेंगे ? हो सकता है कि वे नए रूप में भी आ जाएं। शायद आपको 1997 का पागल गाय रोग (Mad Cow Disease) [Cruetzfeldt-Jakob disease transmited from cattle] का पता होगा। गायों पर इसका हमला इसलिए नहीं हुआ कि वह कहीं सुदूर से आ गया है बल्कि इस तरह के जीवाणु सुप्त अवस्था में गायों में ही रहते हैं और वे किसी प्रकार का कोई रोग उत्पन्न नहीं करते।

लेकिन जब आप शुद्ध शाकाहारी, घासफूस, चारा, चूनी चोकर खाने वाली गाय को मांसाहारी बना देंगे, जैसे इंग्लैण्ड में किया गया तो उनका बीमार होना निश्चित था। इन दूध देने वाली गायों को उनके भोजन में गोमांस के लिए काटी गई गायों का अवशेष, जो वहाँ किसी काम में नहीं आ सकता था, खिलाया गया। (इस देश में इन्हीं जानवरों की हड्डियों से कैल्सियम की गोली बनाई जाती है तथा रक्त से टॉनिक और हमारे विद्वान चिकित्सकों द्वारा जानबूझकर कितने ही भारतीयों के पेट में ठूंस दी जाती है)। जब इन विलायती गायों

ने अपने ही परिवार की गायों की हड्डी, खून, आँतें खाईं तो निश्चित ही था कि उनकी रोग निवारण शक्ति कम होनी ही थी। और ऐसा हुआ भी– गायों को मस्तिष्क रोग (Mad Cow Disease) हुआ और उनका मांस खाने से मनुष्यों में भी हुआ और उनसे इंगलैंड में 5 व्यक्ति मरे और इंग्लैंड का मांस–व्यापार बिल्कुल ठप्प हो गया। अन्ततोगत्वा लाखों गायों को काटकर गाड़ दिया गया क्योंकि उनके मांस को खरीदने वाला विश्वभर में कोई नहीं था।

1988 दिसम्बर में हांगकांग में भी ऐसी ही घटना हुई– मुर्गियों में एक प्रकार का जीवाणु एवियन फ्लू का प्रकोप हुआ जिससे कई हांगकांग निवासियों की मृत्यु हो गई और फिर लाखों मुर्गियों को काटकर गाड़ देना पड़ा। यहाँ भी मुर्गियों को उनके प्राकृतिक वातावरण और भोजन इत्यादि पर न रख कर एक विशिष्ट पद्धति पर पाला गया था जिसमें एंटीबायोटिक, हार्मोन इत्यादि बहुतायत में प्रयोग किए जाते हैं। अब यह गायों और मुर्गियों की इच्छा (जो प्रकृति के नियमों पर आधारित हैं) पर निर्भर नहीं कि वे कब गर्भ धारण करेंगी या बच्चे, अण्डे देंगी। अब यह तो गायों का मालिक या उनका पशु चिकित्सक निश्चित करेगा। अण्डा बिना मुर्गे के ही पैदा होगा।

अभी हाल ही में खबर है कि आस्ट्रिया की सरकार ने इंग्लैंड से आयात किया हुआ बछड़ों का यकृत पकड़ लिया है क्योंकि उसमें क्लोरमफेनिकोल नामक एंटीबायोटिक पाया गया था। ध्यान देने की बात है कि इन देशों में मांस के लिए पाए जाने वाले जानवरों को एंटीबायोटिक दिया जाता है। साथ में जर्मनी, डेनमार्क, पोलैन्ड और रोमानिया में यह भी जाँच की जा रही है कि क्या यह एन्टीबायोटिक मछली के अवशेषों पर आधारित पशु भोजन से बछड़ों में तो नहीं पहुँचा था ? ध्यान रहे कि क्लोरमफेनिकोल नामक एंटीबायोटिक टायफाइड तथा एंथ्रेक्स की कारगर दवा रही है।

अतः कुछ माह पूर्व प्रकाशित अमेरिकी चिकित्सा पत्रिका में यह पाया गया कि टाइफाइड जैसे रोग को पैदा करने वाले कीटाणु अब ऐंटीबायोटिक प्रतिरोधी होते जा रहे हैं। मांस के 200 नमूनों में पाया गया कि 41 प्रतिशत साल्मोनेल्ला नामक जीवाणु की 13 विभिन्न किस्में थीं और उसमें से 84 प्रतिशत एक प्रभावी ऐंटीबायोटिक और कुछ तो 12 प्रभावी एंटीबायोटिक्स तक के प्रतिरोधी थे। यहाँ तक 16 प्रतिशत तो ऐसे साल्मोनेल्ला थे जो सेफट्रीएक्सोन नामक अत्यन्त आधुनिक ऐंटीबायोटिक से भी प्रतिरोधी हो गए थे और शायद यही कारण है कि इन देशों में आँतों की ऐसी बीमारियाँ आ रही हैं जिनपर कोई भी एंटीबायोटिक प्रभावी नहीं है।

काफी वर्षों से मुर्गीपालक वर्जिनियामाइसीन नामक एक दवा का प्रयोग करते रहे हैं जो चूजों की वृद्धि करता है और इसका असर हुआ कि मुर्गी खाने वालों को ऐसे बैक्टीरिया ई. फैसियम से पाला पड़ रहा है जो हर किसी एंटीबायोटिक से प्रतिरोधी है। इतना ही नहीं, गोश्त के माध्यम से पहुँचे ये जीवाणु मनुष्यों में जीवित ही नहीं रहते हैं बल्कि फलते फूलते भी हैं और रोग पैदा करने की क्षमता भी रखते हैं।

इंग्लैंड में हजारों गायें और हांगकांग में लाखों मुर्गियाँ मार कर गाड़ दी गईं। पर क्या इन जीवाणुओं पर काबू पा लिया गया ? नहीं।

अभी तक तो हमारे देश में कसाईघरों में खून, आँत और हड्डियों का प्रयोग दवाओं के रूप में किया जाता रहा है। शायद ही आप विश्वास करें कि हड्डी का चूरा गोली के रूप में 5000 रु0 किलो बिक रहा है। टूटी हड्डी जोड़ने, हड्डियों की कमजोरी इत्यादि के लिए 500 ग्राम की गोली 3.50 रु0 से 5.40 रु0 तक की होती है। इतना ही नहीं, पान में खाने वाला चूना भी 500 रुपये किलो है बशर्ते कि वह डाक्टर द्वारा लिखी गोली के रूप में हो और गाय, भैंस और बकरे का खून जिसका कोई व्यावसायिक प्रयोग नहीं है 200 रु0 प्रति किलो है। जहाँ तक मेरा ज्ञान है कि अधिकांश धर्मों में खून का प्रयोग वर्जित है पर हमारे इस देश में शाकाहारी डाक्टर लिख रहे हैं और शाकाहारी यहाँ तक कि जैन धर्मावलम्बी भी खा रहे हैं– इन गोलियों और टॉनिकों को।

पिछले कुछ वर्षों में बड़े जोड़ों की गठिया जो अपने प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को भी थी उसके बचाव के लिए नई और आधुनिक दो दवाएँ हैं ल्यूकोसीन और कोड्राइटिम सल्फेट। ये दोनों दवाएँ जानवरों और मछलियों से बनाई जाती हैं और कीमत है 1500 से 45000 रु0 प्रति माह जो तीन महीने खाकर तीन महीने नहीं खानी है अर्थात् साल भर में छह माह का सेवन। शायद इनसे आपकी गठिया तो ठीक नहीं होगी पर आपकी जेब जरूर खाली हो जाएगी। अगर आप बहुत सम्पन्न हैं और जेब की फिक्र नहीं है तो Creutzfeldt-Jakob Disease (Mad Cow Disease) की सम्भावना अवश्य होगी। सोचिए क्या आप हर जुकाम, नजला, खाँसी पर एंटीबायोटिक सीधे या फिर कैल्सियम, टॉनिक खाएंगे या फिर खाएंगे स्वस्थ पूर्ण भोजन– भोजन या भोजन पूरक के बीच की पसन्द आपकी है।

78–बी, टैगोर टाउन
इलाहाबाद–211 002

डॉ० ओझा को राष्ट्रीय पुरस्कार

भारत सरकार के महासागर विकास विभाग ने वर्ष 2000 के लिए मौलिक पुस्तक पुरस्कार योजना के अन्तर्गत डॉ0 डी.डी. ओझा द्वारा लिखित 'सागर की संपदा' पुस्तक को चयन किया है। नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी 'तटीय क्षेत्र प्रबंधन' में डॉ0 ओझा को यह पुरस्कार गृह मंत्रालय के सचिव ने प्रदान किया। पुरस्कार रूप में उन्हें दस हजार रुपये प्रदान किए गए। डॉ0 ओझा हिन्दी में विज्ञान लेखन, विज्ञान प्रचार–प्रसार में विगत पच्चीस वर्षों से सतत् प्रयत्नरत हैं।

डॉ० एस. चिन्नी कृष्णा सम्मानित

जीव जन्तु कल्याण, पशु रक्षा एवं उनके संरक्षण के क्षेत्र में किए गए अभिनव प्रयास की मान्यता के लिए देश के गैर सरकारी संस्था का प्रख्यात पुरस्कार 'वेनू मेनन नेशनल एनिमल अवार्ड–2002 : लाइफ टाइम एचिवमेन्ट' भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड के उपाध्यक्ष, डॉ0 एस.चिन्नी कृष्णा को प्रदान किया गया है।

यह अवार्ड भारत के महामहिम उप राष्ट्रपति श्री कृष्ण कान्त ने 19 फरवरी 2002 को दिल्ली में प्रदान किया।

औषधि एवं योग

✍डॉ0 प्रभाकर द्विवेदी

शरीर का स्वाभाविक धर्म स्वस्थ रहना है। जब किसी कारण से शरीर में विकार पैदा हो जाता है तो शरीर अस्वस्थ हो जाता है। अस्वस्थता शरीर के किसी अंग विशेष अथवा सम्पूर्ण शरीर में हो सकती है। शरीर को अस्वस्थता से स्वस्थता के प्राकृतिक रूप में लाने के लिए सामान्य रूप से औषधियों का प्रयोग किया जाता है। अस्वस्थ शरीर को स्वस्थता प्रदान करने के लिए विश्व में अनेक चिकित्सा पद्धतियाँ प्रचलित हैं जैसे— आयुर्वेद, यूनानी, एलोपैथी, होमियोपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा, रेकी, प्राणिक हीलिंग, एक्यूपन्चर, एक्यूप्रेशर आदि आदि। इन विभिन्न पद्धतियों में औषधि के रूप में रस, भस्म, बटी, अवलेह, काढ़ा, अर्क, चूर्ण, गोलियाँ, पिल्स, सिरप, पेस्ट, कैप्सूल, सुई अथवा आवश्यक होने पर शल्य क्रिया का भी सहारा लिया जाता है। इनके साथ साथ उपवास, परहेज़, मालिश, सेंक तथा विविध प्रकार के स्नानों का सहयोग भी उपचार के लिए किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में प्रकृति प्रदत्त पदार्थों के उपयोग और सेवन के साथ ही साथ यौगिक क्रियाओं का उपयोग भी स्वास्थ्य–लाभ के लिए किया जाता है। अब तो अन्य चिकित्सा पद्धतियों में भी यौगिक क्रियाओं का सहयोग लेकर शीघ्र तथा सम्यक आरोग्य लाभ प्राप्त करना आवश्यक समझा जाने लगा है।

पातन्जलि योग सूत्र के अनुसार 'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः' अर्थात् योग चित्तवृत्तियों का निरोध है। चेतना अनन्त तथा अपार सागर के रूप में समस्त ब्रह्माण्ड में परिव्याप्त है। व्यष्टि रूप से यही चेतना आत्मा तथा समष्टि रूप से परमात्मा या ब्रह्म कहलाती है। चेतना के सागर में हलचल के कारण ही समस्त भासित नाम रूपात्मक जगत समुद्र लहरों के समान दृश्य जगत के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। मात्र चेतन तत्व ही सत्य है, शेष सब भासित सत्य, अथवा मिथ्या है। इसीलिए तो कहा गया है— "ब्रह्मसत्यं जगत मिथ्या।" शरीर अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सब कुछ केवल जड़ या विकार है, केवल चेतना ही सत्य है, सनातन है, शेष सब कुछ नाशवान। यौगिक क्रियाओं से शरीर अथवा मन ही नहीं बल्कि चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध करके, चेतना के स्तर तक पहुँचा जा सकता है जो पूर्ण स्वस्थता की स्थिति है। चेतना में वृत्तियों के विकार से पहले मानस रोग होते हैं। तदुपरान्त क्रमिक रूप से शारीरिक रोग होते हैं। यदि जीवन में सम्यक यौगिक अनुशासन का परिपालन किया जाए, तो मनुष्य रोगी ही नहीं हो सकता। किन्तु यदि रोग हो जाए, तो सम्यक यौगिक क्रियाओं के लिए औषधि के साथ ही साथ यौगिक क्रियाओं के प्रयोग से, शीघ्र सम्यक एवं पूर्ण लाभ होता है। अतः रोगी के उपचार के लिए औषधि के साथ ही साथ, योग का प्रयोग अधिक लाभकारी है। उपयुक्त आसनों, ध्यान एवं शाकाहारी भोजन के प्रयोग से औषधि अधिक प्रभावकारी होकर रोग निवारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः योग और औषधि का साथ साथ प्रयोग समुचित एवं पूर्ण उपचार है। औषधि एवं योग के संयुक्त उपचार से जीवन भर के लिए आरोग्य लाभ प्राप्त हो जाने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। औषधि के साथ ही साथ योग का भी सम्यक प्रयोग न करने से आरोग्य प्रक्रिया की अब तक बड़ी हानि हुई है।

योग अपने आप में ही स्वस्थता के लिए एक सम्यक एवं पूर्ण प्रक्रिया है। योग से पूर्ण आरोग्य प्राप्ति यद्यपि सामान्य व्यक्ति के पहुँच के बाहर है फिर भी योग से स्वास्थ्य–लाभ तो होता ही है। अतः क्रमिक उत्थान, पूर्णता की प्राप्ति का प्रथम सोपान तो है ही। योग से शरीर, मन, बुद्धि एवं विभिन्न अवयवों का विकास सम्भव होता है। किन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि योग केवल एक या दो घण्टे मात्र का क्रिया कलाप नहीं है। योग तो चौबीस घण्टे की जीवन–शैली है। योग एक अनुशासित जीवन पद्धति है। यौगिक क्रियाएँ तो दैनिक साधना में मात्र एक सहयोगी की भूमिका ही निभाती हैं। आसनों से शरीर स्वस्थ एवं शक्तिशाली बनता है तथा मन शान्त एवं एकाग्र होता है। इस प्रकार मनुष्य का जीवन सक्रियता से परिपूर्ण एवं शान्त तथा एकाग्र बना रहता है जिससे कार्य क्षमता में वृद्धि तथा शक्ति संचय का लाभ योगी को सहज ही प्राप्त हो जाता है। योगी में रोग के कारणों से लड़ने की क्षमता बढ़ जाती है। इसके साथ ही साथ रोगी के आसपास का वातावरण भी समुन्नत हो जाता है। योग से रोग निवारण में तीन मूलभूत एवं सहयोगी तत्व जिम्मेदार होते हैं– (1) उपयुक्त शारीरिक व्यायाम (2) समुचित पोषण तथा (3) मानसिक शान्ति। समुचित यौगिक क्रियाओं को नियन्त्रित रूप से करने से कार्डियो रिस्पाइरेटरी रिजर्व समुन्नत होता है। इससे मन को अशान्त करने वाले तत्व इन्डोर्फिन्स का क्षरण होता है। विभिन्न अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि व्याययाम की अपेक्षा आसन अधिक लाभप्रद हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। एक तो आसनों से सामान्यतया कम से कम अथवा मध्यम दर्जे का व्यायाम ही होता है, जिससे शरीर थकान का अनुभव नहीं करता, बल्कि और अधिक शक्तिशाली तथा स्फूर्तिदायक बन जाता है। इसके साथ ही साथ योग से शरीर के भीतरी उपांगों विशेषकर गले, फेफड़ों तथा हृदय पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है, जिससे उन उपांगों में विशेष लाभदायक हलचल हो जाती है जो साधारणतया व्यायामों से सम्भव नहीं हो पाती। आसनों से शरीर के जोड़ों पर लाभदायक प्रभाव तथा मांसपेशियों पर कम से कम तनाव पड़ता है, इससे मानसिक तनाव भी कम होकर, चेतना को समुन्नत करने में सफलता मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भौतिक एवं मानसिक विश्रान्ति की प्राप्ति में यौगिक क्रियाओं का विशेष योगदान है जो व्यायाम से सम्भव नहीं है। व्यायाम करने वाले व्यक्ति को अत्यन्त गरिष्ट शक्ति प्रदायक तभा सामिष आहार आवश्यक होता है जबकि योगी को साधारण शाकाहारी, संतुलित तथा मादकतारहित आहार आवश्यकता के अनुरूप कम से कम दिया जाता है। अधिकांश हृदय रोग एवं मधुमेह में चिकित्सक शाकाहार अल्पाहार उचित उपचार के लिए आवश्यक मानते हैं। शाकाहारी आहार में पाए जाने वाले वानस्पतिक रसायन एन्टीऑक्सीडेन्ट होते हैं, जो छूत के रोगों, अपक्षरण के रोगों, तथा कैन्सर से भी रक्षा करने में समर्थ होते हैं। कहावत है जैसा अन्न वैसा मन। योगी को आहार इन्द्रियतुष्टि के लिए नहीं, बल्कि मानसिक शान्ति के लिए दिया जाता है।

यौगिक क्रियाओं में ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान है। ध्यान लगाने से मन शान्त हो जाता है। एक दो बार ध्यान लगाने से दिन भर यौगिक अवधारणा बनी रहती है। यौगिक अवधारणा का तात्पर्य है देहाभिमान से मुक्ति, समत्वभाव, विश्व बन्धुत्व, प्रेम तथा आध्यात्मिक उन्नति। आध्यात्मिक उन्नति से तात्पर्य है– चेतना का विकास, परमशक्ति और अन्ततः समाधि और मुक्ति।

यह तथ्य अब चिकित्सकों की समझ में भली प्रकार आ गया है कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए शान्त एवं संतुलित मन का बड़ा महत्व है। मन एवं शरीर का आपस में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। मानस रोग पहले होते हैं और शारीरिक रोग बाद में। नार्मन कजिन्स ने स्वयं अपने ऊपर प्रयोग करके अनुभव किया कि विटामिन सी के सेवन के साथ खुलकर हंसना 'आटोइम्यून' रोग से छुटकारा पाने में सहायक होता है। इसी प्रकार 'बर्नी सीगेल' ने कैन्सर के रोगियों को जीवन के प्रति सकारात्मक प्रोत्साहन देते हुए उन्हें आरोग्य प्रदान करने में सफलता पाई। इससे निष्कर्ष निकलता है कि मानसिक भावनाओं का स्वास्थ्य–लाभ प्राप्त करने में बहुत बड़ा योगदान होता है। इस अवधारणा की पुष्टि अब तो साइको न्यूरोइम्यूनोलॉजी के विकास के साथ साथ अधिक

सपष्ट होती जा रही है।

लिम्फायड आर्गन्स में आटोनामिक नर्व सप्लाई होती है। इम्यूनोकम्पोनेन्ट–सेल्स में विभिन्न न्यूरोट्रान्समिटर्स एवं हारमोन्स के लिए रिसेप्टर्स होते हैं। तदनुरूप नर्वस सिस्टम में भी साइटोकाइन्स के लिए इम्यून सेल्स द्वारा पैदा किए गए रिसेप्टर्स होते हैं। इन अनुसंधानों के फलस्वरूप अब यह भली प्रकार समझा जाने लगा है कि भावनात्मक दबाव का विभिन्न प्रकार के रोगों, यहाँ तक कि कैन्सर तक होने में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

सामान्य शारीरिक व्याधियों के निदान में तो यौगिक क्रियाओं का अनुकूल प्रभाव पड़ता ही है। जैसे सरवाइकल स्पान्डलाइटिस अथवा पीठ के दर्द समुचित यौगिक क्रियाओं से ठीक किए जा सकते हैं। इससे मांसपेशियों के तनाव में भी आराम मिलता है। यही नहीं, योग से मांसपेशियाँ सुदृढ़ होती हैं तथा उनका गठन भी उन्नत हो जाता है। आयरन से अधिक रक्तचाप के रोगियों में सिस्टोलिक तथा डायलोस्टिक दबाव में कमी आ जाती है। 'डीन ओरनिश' एवं उनके सहयोगियों ने एन्जियोग्राफिकल प्रयोगों से सिद्ध किया है कि ध्यान के नियमित अभ्यास से कोरोनरी हार्ट डिजीज के रोगियों में कोरोनरी स्टेनोसिस में कमी आ जाती है। इसके साथ ही साथ जीवन में समन्वित परिवर्तन परिलक्षित होता है। कुछ अनुसंधानों से पता चला है कि यौगिक क्रियाओं एवं ध्यान से मधुमेह में भी लाभ होता है। दमा एवं एपीलेप्सी में भी ध्यान का लाभ इलेक्ट्रो इनसैफेलोग्राफिक प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। आजकल मानसिक रोगों को दूर करने के लिए मनोचिकित्सकों द्वारा रोगी को स्वयं अपनी समस्याओं को गहन चिन्तन द्वारा समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जिसका प्रत्यक्ष लाभ देखा गया है। इस विधि में रोगी की परिस्थितियों का विश्लेषण करके उसका मार्गदर्शन करके उसकी अहं संरक्षक प्रक्रिया को मजबूती प्रदान कर वाह्य परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने को प्रोत्साहित किया जाता है। इस प्रकार मानस रोगी स्वयं अपने रोग से छुटकारा पाने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। अब तो पाश्चात्य देशों में अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को भली प्रकार स्वीकार कर लिया है कि मानस रोगों तथा इसी क्रम में शारीरिक रोगों का समुचित एवं पूर्ण उपचार आध्यात्मिक उन्नति से ही सम्भव है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि योग से विविध रोगों के निदान का क्षेत्र दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा है। इस विधि से बढ़ती प्रतिष्ठा से इसकी आलोचना भी होने लगी है कि एक ही औषधि से सभी रोगों का उपचार सम्भव नहीं हो सकता। ऐसी गलती तभी सम्भव है जब कोई विशेष प्रकार के उपचार के पक्ष में जानबूझकर नान–टैन्डेमाइज्ड अनकन्ट्रोल्ड ट्रायल करके गलती पैदा कर ले। आलोचक सामान्यतया ऐसा करते और कहते हैं क्योंकि टैन्डमाइज्ड कन्ट्रोल्ड ट्रायल्स एक नियम होने की अपेक्षा मात्र अपवाद होते हैं। अतः किसी निश्चय से पूर्व बड़े समूहों में रोगियों पर ट्रायल करना आवश्यक है। फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि योग कोई पिल नहीं है। यह रोगी में सकारात्मक प्रेरणा प्रदान करता है। चूंकि अभी शरीर एवं मन के सम्बन्ध में पर्याप्त अन्वेषण सम्भव नहीं हो पाया है अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि योग से सभी रोगों का उपचार सम्भव है या नहीं। किसी भी बीमारी में महत्वपूर्ण यह नहीं है कि रोग कैसा है, बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि रोगी कैसा अनुभव करता है। कोई भी निदान जो रोगी में आशा, विश्वास और प्रसन्नता पैदा करे, इससे रोग निदान की प्रक्रिया में सहायता मिलती है, तथा उचित उपचार सफल होता है। रोगी रोग से छुटकारा पा ले, यह योग से अधिक सम्भव है। योग से औषधि की उपयोगिता एवं क्षमता निश्चय ही बढ़ जाएगी।

'अध्यात्म कुटीर'
439ए, वासुकी खुर्द
दारागंज, इलाहाबाद–211006

कैसी हो हमारी पशुपालन नीति की दिशा

✍डॉ अनिल कुमार मिश्र*
एवं डॉ. उमाशंकर मिश्र**

पशुधन भारतवर्ष की अनमोल सम्पदा तथा ग्रामीण जीवन का अभिन्न अंग है। यही कारण है कि पशुधन विकास का कोई भी कार्यक्रम ग्रामीण विकास तथा रोजगार का मुख्य हिस्सा होता है। अब से लगभग 5–6 हजार वर्ष पूर्व मनुष्य ने गोवंशीय पशुओं को पालतू बनाया। तभी से गोवंशी पशु भारतीय खेती पद्धति का एक अहम् हिस्सा रहे हैं, तथा इनको पालने का मुख्य उद्देश्य कृषि को ऊर्जा प्रदान करना रहा है। दुग्ध उत्पादन तो गौण रहा है। एक अध्ययन के अनुसार भारतीय खेती में जो ऊर्जा (ड्राफ्ट पावर) लगती है उसका 75 प्रतिशत पशुओं से मिलता है।

यह हमारे लिए गर्व की बात है कि हमारे देश में विश्व की भैंसों की कुल संख्या का 50 प्रतिशत तथा गोवंशी पशुओं का 20 प्रतिशत पाया जाता है, फिर भी हम न तो खेती के लिए आवश्यक ऊर्जा की पूर्ति कर पा रहे हैं और न ही दुग्ध का उत्पादन बढ़ा पा रहे हैं, जबकि यहाँ पर विश्व की सर्वश्रेष्ठ भैंसों तथा भारवाही पशुओं की नस्लें पाई जाती हैं। आइना–ए–अकबरी में तो भारतीय बैलों को घोड़े से तेज दौड़ने वाला तथा गायों द्वारा 50 पौण्ड तक दूध देने का उल्लेख मिलता है।

आजकल जो पशुधन विकास नीति अपनाई जा रही है उसमें दुग्ध उत्पादन पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है, जिसके तहत् विदेशी गायों, साँड़ों और उनके वीर्य को देश में आयात किया जा रहा है और संकरित नस्लों का विकास किया जा रहा है। इससे अपने देश की अच्छी नस्लों की गायें तो दुर्लभ हो चलीं और दुग्ध उत्पादन में भी आशातीत सफलता नहीं मिली तथा जो नर बच्चे मिल रहे हैं वे कृषि क्रियाओं, परिवहन के काम के लिए अधिक उपयोगी साबित नहीं हो रहे हैं, जबकि यहाँ पर कृषि और परिवहन के लिए बैलों की उपयोगिता बहुत अधिक है। संकरण अपनाने के पीछे यह तर्क दिया जाता है कि हमारे देश में उत्पादन क्षमता कम होने वाली गायों की नस्लों की वजह से दुग्ध उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पाई, जबकि सच्च्चाई यह है कि भारतवर्ष में दुग्ध उत्पादन के लिए भैंस को मान्यता दी गई, गोवंशी पशु तो सामान्यतया कृषि के लिए पाले गए। वर्तमान समय में मान्यताएँ बदली हैं लेकिन दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए गोवंशी पशुओं का पालन ऊर्जा शक्ति की कीमत पर न किया जाए क्योंकि आने वाले समय में निश्चित रूप से ऊर्जा तथा पेट्रोलियम पदार्थों की कमी के कारण खेती के लिए लोगों को बैलों की आवश्यकता महसूस होगी। इसके अलावा हमारे देश की जलवायु भी संकर गायों के अनुकूल नहीं है तथा संकर गायों के खान–पान, रहन–सहन का स्तर इतना ऊँचा रखना पड़ता है कि उनका पालन साधारण किसानों के लिए मुश्किल होता है। अतः देश में गोवंशी पशुओं का विकास टिकाऊ नस्लों के रूप में ही करना होगा, इसी में कृषि और पशुपालन दोनों ही क्षेत्रों की भलाई है, क्योंकि पशु हमारे देश में उपलब्ध चारों, कृषि उत्पादों आदि को समुचित रूप से उपयोग लाने में समर्थ हैं। इसके कारण हमें भूमि का उपयोग मनुष्य और पशु के लिए अलग अलग नहीं करना पड़ेगा, जो कि आज की आवश्यकता है क्योंकि जिस देश की

अधिकतर आबादी अपने लिख खाद्य मानकों के अनुरूप भोजन की व्यवस्था नहीं कर पर रही है वह अपने जानवरों के लिए व्यवस्था करेगी, इसमें सन्देह है। यहाँ यह भी कहना अप्रासंगिक न होगा कि हमारी कुछ देशी नस्लें जैसे साहीवाल, गिर, कांकरेज, सिंधी आदि ब्राजील, फिलिपीन्स, आस्ट्रेलिया आदि देशों को निर्यात की गई है तथा लोग वहाँ उन्हें पसन्द भी कर रहे हैं, कहीं ऐसा न हो कि हमें भविष्य में अपनी ही नस्लों को विदेशों से आयात करना पड़े।

भारत में पशु चिकित्सालयों की एक लम्बी श्रृंखला मौजूद है, जिसपर कार्यरत कर्मचारियों की एक अच्छी खासी टीम है। इनका समुचित उपयोग करने के लिए सरकार को चाहिए कि प्रत्येक पशु चिकित्सालय एक पशुशाला स्थापित करे ताकि कार्यरत विशेषज्ञों का समुचित उपयोग हो सके तथा डेरी विकास भी हो।

आजकल कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से कृषि एवं पशुपालन का प्रसार कार्य चलाया जा रहा है, लेकिन एक तरफ तो कृषि क्षेत्र में प्रत्येक विषय के विशेषज्ञ रखे जाते हैं, दूसरी तरफ पशुपालन क्षेत्र में केवल एक या अधिकतम दो, जबकि दुग्ध और दुग्ध उत्पादों का सकल कृषि उत्पादों में चावल के बाद दूसरा स्थान है। या यों कहिए कि दूध भारत का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कृषि उत्पाद है, फिर यह भेदभाव क्यों ?

पशुपालन नीति का एक अन्य महत्वपूर्ण कारक है– चारा उत्पादन। हमारे देश में भूमि पर पशु एवं मानव के बीच प्रतिस्पर्धा के कारण हरे चारे बोने के लिए कृषि भूमिं का अधिक उपयोग संभव नहीं है। पशुओं को वर्ष भर प्रायः पुआल, ज्वार, बाजरा व मक्का की कड़वी, गेहूँ, जौ, भूसा आदि पर ही रहना पड़ता है जिनकी पोषक शक्ति कम है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि चारे की फसलों की उत्पादकता इकाई बढ़ाई जाए तथा वृक्ष चारे का उपयोग बढ़ाया जाए। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि कुछ वृक्षों की पत्तियाँ पोषकता के दृष्टिकोण से हीन नहीं हैं। इसके अतिरिक्त चारा–वृक्षों का उत्पादन वन भूमि, पंचायत भूमि, बंजर भूमि, चारागाह व सड़कों तथो रेलवे लाइनों के दोनों तरफ खाली जमीन आदि जैसी बेकार पड़ी भूमि पर किया जा सकता है।

पशुओं की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए कृषि यन्त्रों, बैलगाड़ियों आदि में अभी सुधार की काफी संभावनाएँ हैं, अतः इस क्षेत्र में समुचित अनुसंधान की आवश्यकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि भारत में सकल दुग्ध बढ़ाने के लिए हमारा प्रयास यह होना चाहिए कि प्रत्येक पशु का उत्पादन बढ़ाया जाए तथा जो भी पशुपालन नीति बनाई जाए वह देश की जरूरतों, परिस्थितियों तथा उपलब्ध संसाधनों को दृष्टिगत रखते हुए ही बनाई जाए।

***प्रवक्ता, पशुपालन विभाग**
कुलभास्कर आश्रम महाविद्यालय
इलाहाबाद
**** प्रवक्ता, मृदा विज्ञान**
महात्मा गाँधी ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, सतना–485311
(मध्य प्रदेश)

व्हिटेकर पुरस्मार 2002 घोषित

वर्ष 2002 के व्हिटकर पुरस्कार निम्नलिखित विज्ञान लेखकों को प्रदान किए जाएंगे–

1. **डॉ. पीयूष पाण्डेय, कोलकाता**
2. **डॉ. प्रदीप कुमार मुखर्जी, नई दिल्ली**

विज्ञान परिषद् की बधाईयाँ !

–सम्पादक

बुन्देलखण्ड (उत्तर प्रदेश) की जल समस्या : संरक्षण एवं प्रबन्धन

राजेश कुमार ओझा

वायुमण्डल में विद्यमान आक्सीजन के बाद मानव की दूसरी सबसे बड़ी आवश्यकता जल है। जल के अभाव में पृथ्वी पर किसी प्रकार के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। वास्तव में यह प्रकृतिप्रदत्त एक निःशुल्क उपहार है। पृथ्वी पर पाए जाने वाले विभिन्न जीवों की भाँति मनुष्य स्वयं जल पर आधारित एक प्राणी है जिसके शरीर के कुल भार का 51 से 67 प्रतिशत भाग जल ही होता है। इस दृष्टि से जन्तु जगत के विकास हेतु जलसंरक्षण एवं प्रबन्धन अति आवश्यक है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस प्रपत्र में बुन्देलखण्ड (उत्तर प्रदेश) की जल समस्या एवं प्रबन्धन के संबंध में कुछ तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

–सम्पादक

सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड भूभाग का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 73 हजार वर्ग किलोमीटर है। बुन्देलखण्ड दो प्रदेशों में विभक्त है। उत्तर प्रदेश में बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत बांदा, चित्रकूट, हमीरपुर, जालौन, महोबा, ललितपुर एवं झांसी जनपद आते हैं जिसका कुल क्षेत्रफल 33 हजार वर्ग किलोमीटर है। समुद्र तल से दक्षिण की ओर 1500 मी0 तथा उत्तर की ओर 750 मी0 की ऊँचाई वाला यह क्षेत्र विविध भौगोलिक विशेषताओं से ओतप्रोत है। इस क्षेत्र की अधिकांश नदियाँ केन, बेतवा, धंसान, बागिन, पयस्वनि आदि विन्ध्याचल श्रेणियों से निकल कर गहरे संकरे व बीहड़ क्षेत्रों में बहती हुई उत्तर पूर्व में यमुना नदी की गोद में समा जाती हैं। जहाँ तक इस क्षेत्र के जल स्तर का प्रश्न है इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि सिंचित क्षेत्रों में जल स्तर ऊपर है (लगभग 6 मी0) जबकि नदियों के बीहड़ तथा पहाड़ियों व पठारी क्षेत्रों में गहराई (लगभग 25 मी0) में मिलता है। दक्षिण पूर्व से उत्तर पश्चिम की ओर जाने पर वर्षा की मात्रा कम होती जाती है। विन्ध्याचल की पहाड़ियों में 100 सेमी0 से अधिक जबकि मैदानी क्षेत्रों में 80 सेमी0 से भी कम वर्षा होती है। बुन्देलखण्ड (उत्तर प्रदेश) में मुख्यतः लाल, पीली, भूरी, राकड़, मोरम युक्त मिट्टियाँ पाई जाती हैं जिनमें नमी धारण करने की क्षमता न के बराबर होती है। ढालू धरातल होने के कारण कुछ भूभाग का वर्षा जल शीघ्र बहकर एक ओर तो नदियों की गहरी घाटियों में पहुँच जाता है जबकि दूसरी ओर यहाँ का पठारी धरातल और ऊँचा तापमान (30 से 49 सेन्टीग्रेड) वाष्पीकरण प्रक्रिया को गति प्रदान करता है। परिणामतः यह समस्या और भी विकराल होती जा रही है।

वर्तमान समय में ही नहीं बल्कि प्राचीन काल से ही यह क्षेत्र जलाभाव से सतत ग्रसित रहा है। वर्षा की अनिश्चितता, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित इस क्षेत्र में कभी कभी ही मानसून अच्छी वर्षा कर लगभग 50 लाख जनसंख्या तथा लगभग 30 लाख पशु समूह को खुशहाल करने में समर्थ रहा है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में 'अधिक खेती कम आबादी' तथा सीमित आवागमन के साधनों के कारण यह समस्या विकराल महसूस नहीं होती थी लेकिन वर्तमान युग में लगातार आबादी के बढ़ने, कृषि उद्योग एवं अन्य क्षेत्रों की जल मांग में निरन्तर वृद्धि होने तथा साथ ही स्थानीय स्तर पर जल संरक्षण एवं प्रबन्धन पर विशेष ध्यान न दिए जाने के कारण जल समस्या दिन प्रतिदिन

बढ़ती ही जा रही है।

मध्यकाल में चंदेल व बुंदेल राजाओं ने यहाँ की विषम भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन कर जलभराव की समस्या को सुलझाने के लिए छोटे–बड़े जलाशयों का निर्माण करवाया था, जिसके प्रमाण आज भी मौजूद हैं। इनके स्वर्णिम शासन काल में खुदवाए गए विभिन्न तालाबों के आधार पर यदि महोबा को 'तालाबों की नगरी' कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। यहाँ के मदन सागर, कीरत सागर, विजय सागर, बेलाताल आदि की शोभा देखते ही बनती थी। किन्तु उचित संरक्षण न होने के कारण आज ये रमणीय सरोवर प्रदूषण के केन्द्र बन गए हैं। राजा प्रताप सिंह जू देव और वीरसिंह जू देव ने भी अपने शासनकाल में न केवल अनेक तालाबों को खुदवाया अपितु कई सरोवरों का जीर्णोद्धार भी करवाया था जिनका मुख्य उद्देश्य इस क्षेत्र में जल की कमी को दूर करना था। वैसे तो बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्रत्येक गाँव/कस्बे में छोटे या बड़े तालाब पाए जाते हैं जिनमें वर्षा जल इकट्ठा होता है लेकिन क्षेत्रफल एवं महत्व की दृष्टि से बरुवासागर, मानिकपुर, झील, बल्देवसागर, प्रागी तालाब, छावी तालाब, नवाब तालाब, जमरेहीनाथ तालाब आदि जैसे नामी सरोवर अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

ब्रिटिश शासकों ने भी जल समस्या के समाधान हेतु कुछ स्थायी वह अस्थायी राहत योजनाओं को क्रियान्वित कर इस क्षेत्र की प्यासी जनता की सहायता करने का प्रयास किया था। इनके शासन काल में ही केन आदि नहरों का निर्माण हुआ परन्तु अध्ययन क्षेत्र के विशाल भूभाग को देखते हुए ये योजनाएँ महत्व की दृष्टि से अत्यल्प थीं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में चित्रकूट का पाठा क्षेत्र और ललितपुर का पठारी भूभाग सदियों से जलाभाव से पीड़ित रहा है। समय समय पर पड़ने वाले भयंकर अकाल एवं सूखा से यहाँ की अर्थव्यवस्था काफी दयनीय एवं चिन्तनीय रही है। पथरीला स्थलीय स्वरूप, उच्च तापमान, तेज जल प्रवाह, नीचा जल स्तर और मोरम युक्त मिट्टियाँ यहाँ के जलाभाव का प्रमुख कारण हैं। पाठा क्षेत्र की जल समस्या तो इतनी विकट थी कि यहाँ पानी का मूल्य दूध और मानव जीवन से ऊँचा माना जाता था जैसा कि निम्न लोकोक्तियों एवं कहावतों से स्पष्ट है–

"मरद मर जाय, गागर नहिं फूटे"
"पैसे दूध टकैं गगरी, आग लगै रूकना ददरी"
"हम विधवा भले हो जाए,
पर हे नाला तेरा बहना न बन्द हो"

वैसे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शासन ने इस समस्या से निदान पाने हेतु अनेक छोटी बड़ी पेयजल व सिंचाई योजनाओं को लागू किया है परन्तु उनका व्यापक प्रभाव इन क्षेत्रों के आर्थिक व सामाजिक क्षेत्रों में परिलक्षित नहीं होता है। अन्य क्षेत्रों की समस्या के निराकरण हेतु सरकार ने अनेक नवीन नदी घाटी योजनाओं को लागू कर बड़े बड़े जलाशयों– जैसे माताटीला, पारीक्षा, गोविन्दसागर, उर्मिल, पाहुँज बाँध, ओहन बाँध आदि का भी निर्माण कराया और अनेक योजनाएँ विचाराधीन हैं। लेकिन इतना सब किए जाने के बावजूद भी बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जल समस्या का उचित हल तलाशा नहीं जा सका है जो सरकार, वैज्ञानिकों, नीति निर्धारकों एवं शोधार्थियों के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ है।

जल समस्या से सम्बन्धित कुछ प्रमुख विचारणीय बिन्दु इस प्रकार हैं–

1. क्षेत्र का आधे से अधिक भाग ढलुआ होने के कारण लगभग 60 प्रतिशत से अधिक जल तेजी से बह जाता है।

2. निरन्तर वनों के कटान ने तापमान एवं भूमिगत जल भण्डार को प्रभावित किया है।

3. पथरीला धरातल और ऊँचा तापमान वाष्पीकरण प्रक्रिया को गतिशील बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

4. भूमिगत जल का विवेकपूर्ण उपयोग न होने पर जल स्तर नीचे गिरा है। इसके लिए किन्हीं किन्हीं क्षेत्रों में नलकूपों की अधिक संख्या भी उत्तरदायी है।

5. निरन्तर बढ़ती हुई आबादी एवं अबाधगति से तालाबों, पोखरों में हो रहे अतिक्रमण से क्षेत्रीय जलाशयों के आकार और उनकी संख्या में लगातार कमी हो रही है।

6. जलाशयों में लगातार कूड़ा कचरा इकट्ठा होने तथा समय समय पर सफाई न होने से वे निरन्तर उथले एवं छिछले होते जा रहे हैं।

7. तालाबों में बेशर्म, जलकुम्भी व अन्य वनस्पतियों के लगातार फैलाव होने के कारण जलाशय नष्ट हो रहे हैं।

8. अंधाधुंध यूकेलिप्टस (सफेदा) के पेड़ लगाने की होड़ में भी भूजल स्तर तथा मृदा की नमी प्रभावित हुई है।

9. बरसाती जल को नियंत्रित कर जल संग्रह हेतु कुछ बड़े बाँधों का निर्माण किया गया है लेकिन स्थानीय स्तर पर जल समस्या के समाधान हेतु छोटे बड़े बाँधों एवं मेड़बन्दी के निर्माण को प्राथमिकता प्रदान नहीं की गई है।

10. सरकारी या ग्राम पंचायतों की आय बढ़ाने के चक्कर में तालाबों के भीटों (कगारों) की ऊँची भूमि में जुताई बुआई करने से घास एवं वृक्षों के आवरण साफ हो गए हैं। इससे बरसाती जल द्वारा भूमि कटाव होने के कारण मिट्टी बह कर उनकी तली में निरन्तर जमा हो रही है जिससे जलाशयों की जलग्रहण क्षमता, गहराई, क्षेत्रफल में विशेष रूप से कमी आई है।

जल संरक्षण एवं प्रबन्धन

समय के साथ साथ घरेलू कार्यों, धन्धों, कृषि, ऊर्जा आदि क्षेत्रों में जल के अधिकाधिक उपयोग की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई है। जल की निरन्तर बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के उद्देश्य से जल संरक्षण एवं प्रबन्धन की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके अन्तर्गत जल संसाधनों के परीक्षण, नियंत्रण एवं विकास संबंधी प्रक्रिया पर बल दिया जाता है। क्षेत्र में उपस्थित जल संसाधनों के संरक्षण एवं प्रबन्धन हेतु कुछ प्रमुख उपाय निम्न प्रकार हैं :

1. वर्षा जल को नियंत्रित करना, उसे संग्रहीत करना ही जल संरक्षण एवं प्रबन्धन की महत्वपूर्ण विधि है।

2. नदियों में जल विभाजकों का प्रयोग कर वर्षा के जल द्वारा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सिंचाई करने का अनुभव प्रयोग द्वारा किया जाता है।

3. पहाड़ी व पठारी क्षेत्रों में सीढ़ीनुमा वेदिकाओं द्वारा पानी का बहाव रोककर खेती की जा सकती है। इस विधि में ढालू भागों में पत्थर की दीवार बनाकर पानी के तेज बहाव को रोका जा सकता है। इससे अपरदन तो नियन्त्रित होगा ही, पानी सीढ़ीनुमा खेतों में निष्पादित होकर गहराई तक पहुँच जाएगा।

4. उच्च ढलुआ भूमि में वनों की उपस्थिति जल प्रवाह को धीमा करती है जिससे एक ओर भूमि के क्षरण में कमी आएगी तथा दूसरी ओर भूमि में नमी बनी रहेगी और बाढ़ भी नियंत्रित रहेगी।

5. तालाबों, बाँधों के चारों ओर वृक्षों की सघन पेटी विकसित की जाए ताकि वाष्पीकरण की मात्रा में कमी लाई जा सके।

6. जल की सतत उपलब्धता कायम रखने के लिए भूजल का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाए जिससे जल की आपूर्ति और उपयोग में सन्तुलन बना रहे।

7. अशुद्ध जल को शुद्धीकरण प्रक्रिया द्वारा पीने योग्य बनाया जाए और नदियों, झीलों, तालाबों एवं जलाशयों के जल प्रदूषण पर कठोरता से प्रतिबन्ध लगाए जाएँ।

8. लघु सिंचाई योजनाओं के अन्तर्गत भूमिगत जल क्षमता का उपयोग किया जाता है जिसमें ज्यादा निवेश की आवश्यकता नहीं होती। यह योजना कृषकों के लिए अधिक उपयोगी है क्योंकि इससे उन्हें सिंचाई के लिए उपयुक्त समय पर जल मिल जाएगा।

9. विस्तृत पैमाने पर वृक्षों को लगाया जाए। इससे भूमि के जलावशोषण में वृद्धि होगी, साथ ही भू जल स्तर में भी बढ़ोतरी होगी एवं अप्रत्यक्ष रूप से वृक्ष के द्वारा आर्थिक लाभ होगा क्योंकि एक वृक्ष अपने पचास वर्ष के जीवन काल में निम्न प्रकार लाभ देता है–

वृक्ष से प्राप्त आक्सीजन	2.5 लाख रुपये
वायु प्रदूषण की रोकथाम	5.0 लाख रुपये
मिट्टी संरक्षण, मिट्टी को उपजाऊ बनाना	2.5 लाख रुपये
जल अवशोषण एवं आर्द्रता नियंत्रण	3.0 लाख रुपये
पशु, पक्षियों एवं अन्य प्राणियों को आसरा	2.5 लाख रुपये
लकड़ी, फल, फूल इत्यादि का मूल्य	0.20 लाख रुपये
कुल योग	15.70 लाख रुपये

सारणी – 1

क्रम	चट्टान	भू-आकृति	सतही जल एवं भू जल निकास तथा प्रबंध
1	ऊपर मृदा तथा नीचे चट्टान	समतल क्षेत्र तथा ढलान वाले क्षेत्र	कृत्रिम जलावरण तथा जलप्लावन तथा भूमि की ऊपरी सतह में कृत्रिम जल धारक बनाना, बाढ़ के जल को ऐसे क्षेत्रों में फैलाना।
2	कठोर चट्टानी तथा पथरीली	घाटी का ढलान क्षेत्र	कन्टूर बंधियों द्वारा वर्षा के जल निकास को प्रतिबाधित करना। इन बंधियों पर वृक्ष लगाना, जिससे कटाव तथा क्षरण को रोका जा सके। कम ढलान वाले क्षेत्र में बंधियों का निर्माण, झरना तथा जल स्रोतों का उचित उपयोग।
3	कठोर चट्टान	पठारी क्षेत्र	यह क्षेत्र छोटे छोटे जलाशय तथा बंधियों द्वारा वर्षा के जल को प्रभावित करने के लिए उपयुक्त है। इनकी उपस्थिति से भू जल धारकों में कृत्रिम जल भराव संभव हो सकेगा।
4	चट्टानी क्षेत्र जहाँ भूजल दबाव में हो	समतल तथा कम ढलुआ क्षेत्र	'इन्जेक्शन' कूप तथा 'कलेक्टर' कूप के द्वारा कृत्रिम भू जल भण्डारण उपयोग।
5	कठोर चट्टान एवं पत्थर	पहाड़ी ढलान	ये क्षेत्र स्थायी झरनों तथा सोते के उद्गम स्थल हैं। इनकी खोज तथा विकास पेयजल योजना तथा कृषि जलाशय के रूप में किया जा सकता है।
6	वनों से आच्छादित पथरीले क्षेत्र	नदी घाटी क्षेत्र	नलकूप तथा 'इन्जेक्शन' नलकूपों द्वारा भू जल दोहन तथा कृत्रिम भू जल भण्डारण।

10. जल संरक्षण के संबंध में कृषकों को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है कि किस फसल के लिए किस समय में कितनी जल की मात्रा चाहिए। इससे व्यर्थ में बहने वाले जल को रोका जा सकता है।

बुन्देलखण्ड जैसे क्षेत्र में जहाँ की जमीन अधिक बलुई, पथरीली तथा चट्टान युक्त है, सतही जल तथा भू जल समन्वित प्रबंध अत्यन्त आवश्यक है। इस पथरीले प्रदेश में वर्षा तथा सतही जल ही मुख्य रूप से भू जल को भरते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि जिन स्थानों पर भू जल स्तर नीचे गिर गया है या गिर रहा है, वहाँ सतही जल का भंडारण बन्धी तथा जलाशय बनाकर किया जाए। इसके अतिरिक्त उन स्थानों पर जहाँ भू जल स्तर बहुत ऊपर आ गया है उन स्थानों को पहचान कर, जल स्तर नीचे लाया जाए। इसके लिए उन स्थानों पर कम गहराई के नलकूप लगाए जा सकते हैं। इस क्षेत्र के जल प्रबंध विकास के लिए सारणी–1 में दिए हुए सुझाव अत्यंत उपयोगी सिद्ध होंगे।

उपरोक्त विवेचन से यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र के समन्वित विकास में पूर्वकाल से लेकर आज तक जल समस्या एक सशक्त अवरोधक के रूप में रही है जिसका सीधा प्रभाव यहाँ के कृषि उत्पादन, औद्योगीकरण, मानव सभ्यता, संस्कृति पर पड़ा है। वैसे इस समस्या से छुटकारा दिलाने के लिए शासन, प्रशासन तथा स्वयंसेवी संस्थाएँ सतत प्रयत्नशील हैं परन्तु जब तक स्थानीय स्तर पर जल समस्या के निदान हेतु सुझाए गए बिन्दुओं पर गम्भीरता से विचार नहीं किया जाएगा तब तक हमारे विचार से इनका स्थायी समाधान ढूँढना असम्भव है।

शोधछात्र, भू-विज्ञान विभाग
महात्मा गाँधी ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट

कौन कहता है कि ज्योतिष विज्ञान नहीं है

शील कुमार मिश्र

विज्ञान क्या है, इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है। विज्ञान की कोई सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है। कैंब्रिज डिक्शनरी के अनुसार, "भौतिक जगत की संरचना एवं व्यवहार का प्रयोगों और मापन के द्वारा क्रमबद्ध अध्ययन करना, प्राप्त ज्ञान, परिणामों की व्याख्या करने के लिए सिद्धांतों का प्रतिपादन करना विज्ञान कहलाता है।" भौतिक विज्ञान की प्रणाली को हम तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं। एक, किसी घटना के बारे में प्रायोगिक प्रमाणों का संग्रह करना। दो, संग्रहीत सभी तथ्यों को क्रमबद्ध वर्गीकृत करके संभव हो, तो उन्हें गणितीय ढाँचे में प्रस्तुत करना। तीन, गणितीय मॉडल को सामान्य भाषा में सिद्धांत या नियम के रूप में प्रस्तुत करना जिसे सभी समझ सकें तथा परीक्षण और अनुप्रयोग कर सकें।

प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने ज्योतिष विज्ञान का प्रतिपादन भी इसी पद्धति से संभवतः किया होगा। ज्योतिष में किसी व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्तियों, जीवन की घटनाओं तथा जन्म के समय ग्रहों की स्थितियों से जुड़े तथ्यों का संग्रह किया जाता है। पर्याप्त तथ्यों का अध्ययन, वर्गीकरण करने के पश्चात् प्राप्त निष्कर्षों को नियम रूप में प्रयुक्त किया जाता है, जैसे ग्रहों की स्थितिविन्यास (योग) के अनुरूप ही फल प्राप्त होता है। इन नियमों का पुनः प्रयोग करके ज्योतिषी किसी व्यक्ति की मानसिक प्रवृत्ति या जीवन में घटित होने वाली घटना की संभावना व्यक्त करता है। यह किसी भी मान्य आधुनिक विज्ञान की तरह सांख्यिकी पर

प्रख्यात मनोवैज्ञानिक सी जे जुंग ने प्राच्य विद्याओं (ज्योतिष, आईचिंग) का गंभीरतापूर्वक अध्ययन एवं अनुशीलन किया था। कई बार वह इनका उपयोग मनोरोगों की पहचान के लिए करते थे। इनकी सत्यता और व्यावहारिक उपयोगिता से प्रभावित होकर जुंग ने कहा था कि तीन सौ वर्षों से विश्वविद्यालयों के द्वार ज्योतिष के लिए बंद हैं, लेकिन आने वाले तीस वर्षों में ज्योतिष इन बंद दरवाजों को तोड़कर विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाकर रहेगा। जुंग की भविष्यवाणी अब सच साबित हो रही है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 25 विश्वविद्यालयों में ज्योतिष शिक्षा प्रारंभ करने की घोषणा की है। इस घोषणा से वामपंथी विचारधारा के अनुयायी बहुत आहत हैं। उन्हें यह चिंता सता रही है कि प्रगतिशील भारतीय समाज अज्ञान के अंधेरे में डूब जाएगा, लोग अकर्मण्य और आलसी हो जाएंगे, चिंतन ही विकृत हो जाएगा।

रूस में चेजोवस्की ने 700 वर्षों के इतिहास का अध्ययन करके कहा था कि जब जब सूर्य पर महाविस्फोट होते हैं, पृथ्वी पर युद्ध और क्रांतियों का सूत्रपात होता है। स्तालिन ने चेजोवस्की को जेल में बंद कर दिया, क्योंकि कार्ल मार्क्स और कम्युनिस्टों का विचार है कि पृथ्वी पर जो क्रांतियाँ होती हैं उनका मूल कारण एक छद्म विज्ञान (स्यूडो साइंस) है। इस संदर्भ में महर्षि अरविंद ने कहा था, "आज तक वस्तुतः वैज्ञानिक प्रणाली से ज्योतिष को झूठा विज्ञान किसी ने सिद्ध नहीं किया है।"

आधारित प्रणाली जैसा ही है। जैसे भौतिक विज्ञान में ताप और दाब के आधार पर अणुओं के व्यवहार की भविष्यवाणी की जाती है, ठीक उसी प्रकार ज्योतिष विज्ञान में ग्रहों, प्रवृत्तियों के आधार पर भविष्यवाणी की जाती है।

विज्ञान में यदि किसी ने ए बराबर बी को सिद्ध किया है, तो बी बराबर ए अर्थात् काउंटर प्रूफ पाए जाने पर उच्चकोटि का प्रमाण बन जाता है। ज्योतिष में इसे बिना अधिक ज्योतिष पढ़े कोई भी आजमा सकता है। जैसे ज्योतिष का एक नियम है कि यदि लग्न पर बृहस्पति का प्रभाव है, तो व्यक्ति को जनता से सम्मान मिलता है। एक बार मैं किसी अपरिचित व्यक्ति के पास गया, तो पाया कि जो भी लोग उनके पास आ रहे थे, वे चरणस्पर्श कर उन्हें प्रणाम कर रहे थे। मैंने पूछा कि क्या आपके लग्न से बृहस्पति का संबंध है, तो उन्होंने आश्चर्यपूर्वक सकारात्मक उत्तर दिया। ज्योतिष में इस तरह के हजारों सरल नियम हैं, जिनका परीक्षण कोई भी आलोचक तत्काल कर सकता है।

आकाश में घूमते ग्रह धरती के जीवन पर विशेष प्रकार का प्रभाव डालते हैं, इसकी व्याख्या आधुनिक विज्ञान की अवधारणा के अनुसार की जा सकती है। भौतिक विज्ञान के अनुसार किसी समय व स्थान पर तीन प्रकार का प्रभाव पड़ता है: विकिरण प्रभाव, गुरुत्वाकर्षण प्रभाव और चुंबकीय प्रभाव। इन तीनों प्रभावों को हम एकसाथ 'कॉस्मिक प्रभाव' कह सकते हैं। किसी व्यकित के जन्म समय पर 'कॉस्मिक प्रभाव' की उसके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इसका अध्ययन अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों ने किया था, जिनका ज्योतिष से कुछ लेना देना नहीं था। येल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हटिंगटन ने जन्म के समय की ऋतु और मनुष्य की कार्यक्षमता में अंतर्संबंध की खोज की। 1953 में चार्ल्स ने 'जन्म के समय और मानसिक प्रवृत्तियाँ' नामक शोधपत्र को इंग्लैण्ड की प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' में प्रकाशित करवाया था। 1973 में हारे, प्राइस और स्लेटर ने 'जन्म समय और मानसिक रोग' नामक शोधपत्र को 'नेचर' में छपवाया था। इसी विषय पर पार्कर और नेल्सन ने ब्रिटिश जर्नल ऑव साइकियाट्री में शोधपत्र प्रकाशित करवाया।

चंद्रमा का धरती पर गुरुत्वाकर्षण इतना प्रबल है कि समुद्र में ज्वार भाटे आते हैं। मनुष्य के शरीर में लगभग 70 प्रतिशत द्रव है, जो कुछ कारणों से नमकीन है। अतः यह सामान्य ज्ञान की बात है कि चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव मनुष्य के शरीर में उपस्थित द्रव पर भी पड़ेगा। इस दिशा में भी कई वैज्ञानिकों ने खोजबीन की है, जिनमें प्रमुख हैं डी.एम. लेलिनफील्ड, जिनका शोधपत्र 'चंद्रमा का मानसिक रोगों पर प्रभाव' 1969 में अमेरिकन जर्नल ऑव साइकियाट्री में प्रकाशित हुआ था। यह पाया गया है कि पागलपन का उन्माद, मिरगी के दौरे, आपराधिक एवं सड़क दुर्घटनाएँ पूर्णिमा के आसपास बढ़ जाती हैं।

चुंबकीय क्षेत्र का प्रभाव चिकित्सा जगत में ब्लडप्रेशर जैसी कई समस्याओं के नियंत्रण में प्रयुक्त होता है। सौरमंडल के ग्रहों के चुंबकीय क्षेत्र का प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। कुछ लोग इस पर तर्क देते हैं कि पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र की तुलना में ग्रहों के चुंबकीय क्षेत्र का मान बहुत कम है। यह सत्य है, लेकिन इस चुंबकीय बल की मात्रा नहीं, बल्कि ग्रहों की गति के कारण पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्रों में आने वाला परिवर्तन महत्वपूर्ण होता है। चुंबकीय क्षेत्र में परिवर्तन के कारण मनुष्य के मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर फ्रेडमैन और उनके सहयोगियों ने एक शोधपत्र तैयार किया था, जो 1970 में 'नेचर' में प्रकाशित हुआ था।

ग्रहों का मानव जीवन पर प्रभाव है, यह तो ज्ञात है, किंतु यह प्रभाव किस क्रियाविधि (मेकेनिज्म) से पड़ता है, अभी तक इस दिशा में वैज्ञानिकों ने कोई खोजबीन नहीं की है। एक प्रयास ब्रिटेन के एस्ट्रोनॉमी स्कूल के प्रिंसिपल पर्सी सेमोर ने अपनी पुस्तक 'एस्ट्रोलॉजीः द एविडेंस ऑव साइंस' में किया है। संभव है इसमें प्रकृति के गहरे रहस्य काम कर रहे हों, यह अभी तक विज्ञान की परिधि में या वैज्ञानिकों के संज्ञान

में नहीं आ सके हैं।

कारण और प्रभाव में कई बार प्रत्यक्ष विधि से संबंध दर्शाना संभव नहीं होता है। 'कॉस्मिक प्रभाव' (ग्रहों से आ रहे विकिरण, गुरुत्वाकर्षण बल, चुंबकीय बल आदि) पृथ्वी पर आते हैं। मनुष्य के शरीर के संवेदक उसे ग्रहण कर मस्तिष्क तक ले जाते हैं, उसका प्रभाव चेतन मन पर पड़ता है, फिर मन में विचार उत्पन्न होते हैं। जैसे विचार उत्पन्न होते हैं वैसे ही कार्य के लिए मनुष्य तत्पर होता है। इस संपूर्ण प्रक्रिया को किसी वैज्ञानिक उपकरण से दर्शाना अभी संभव नहीं हुआ है।

मेरे कमरे में एक बल्ब जलता है, तो कमरे के प्रत्येक स्थान पर प्रकाश विकिरण की तीव्रता भिन्न भिन्न होती है, इसे उपकरण से मापा जा सकता है। किंतु पृथ्वी और ग्रहों के बीच की दूरी अधिक है, अतः ग्रहों से आ रहे प्रभावों को संपूर्ण पृथ्वी के लिए एकसमान मान लिया जाता है, क्योंकि अभी तक इतने संवेदनशील उपकरण नहीं बने हैं, जो भिन्न भिन्न स्थानों या भिन्न भिन्न व्यक्तियों के लिए 'कॉस्मिक प्रभाव' के सूक्ष्म अंतर को माप सकें। विज्ञान आज भी विकास की सतत प्रक्रिया में है। रोज संशोधन, परिवर्द्धन हो रहे हैं। सूक्ष्म कण न्यूट्रिनो को पिछले 60 वर्षों से भारहीन कण माना जाता रहा। 18 जून 2001 को कनाडा में प्रयोगों के आधार पर वैज्ञानिकों ने घोषणा की कि न्यूट्रिनो में द्रव्यमान होता है। इस खोज के बाद ब्रह्मांड के विभिन्न सिद्धांतों में वैज्ञानिकों को संशोधन, समायोजन करना पड़ा।

आज विज्ञान के पास विश्व के प्रत्येक 'कैसे और क्यों' का उत्तर नहीं है। खरबों रुपये जीनोम परियोजना पर व्यय करने के बाद वैज्ञानिक मनुष्य के संपूर्ण जीनों को पहचानने में सफल हो गए हैं। अब वे बता सकते हैं कि किस जीन की खराबी से कौन सा रोग उत्पन्न होता है। लेकिन वे अभी तक यह नहीं बता सकते कि कोई जीन आखिर दोषपूर्ण क्यों हो जाता है। जबकि एक कुशल ज्योतिषी इसे सरलता से व्यक्त कर सकता है, यदि अष्टमेश का प्रभाव लग्न या लग्नेश पर हो, तो जेनेटिक दोष के कारण रोग उत्पन्न होते हैं।

– साभार

पृष्ठ 12 का शेष ....

मुख्य उद्देश्य देश में नाशकजीवों द्वारा उत्पादन में हुई हानियों को कम करना है। इसके तहत नाशकजीवों का नियंत्रण जैव विधियों द्वारा किया जाता है। सस्य समायोजन तथा सूक्ष्मजलवायु परिवर्तन द्वारा रोगरहित उच्च गुणवत्ता के प्रामाणिक बीजों का उपयोग रोग नियंत्रण का एक मूलभूत साधन है। फसल हानि को कम करने में नाशक जीव प्रतिरोधक प्रजातियों का उपयोग किया जाना चाहिए। जीन प्रत्यारोपण, मोजेइक, आदि प्रविधियाँ किसी प्रजाति के जीवन काल को बढ़ाने के में सहायक होती हैं। एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की कार्य नीति के अन्तर्गत पादप पर आधारित जैव कीटनाशी जैसे नीम की खली व इसके विभिन्न रूप, नाशक जीवों को अलग करने के लिए ट्रैप फ़सल एवं नाशीजीव नियंत्रण कार्यक्रम के अन्तर्गत अन्य यांत्रिक प्रविधियों एवं प्रकाश ट्रैप का भी प्रयोग किया जाता है। एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन की सफलताओं में चावल, गन्ना, कपास, साइट्रस एवं अनेक सब्जियाँ प्रमुख हैं। एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के तहत पायरिला, गन्ने का तना छेदक, धान की फसल में तना छेदक पर काफी हद तक नियंत्रण चल रहा है। इस तरह से एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन कृषि के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है।

(लेखिका डॉ0 गोपाल पाण्डेय से मिली सहायता के लिए आभार व्यक्त करती हैं)

बायोवेद शोध एवम् प्रसार केन्द्र
103/42, मोतीलाल नेहरू मार्ग
इलाहाबाद

केशतेलों पर उपभोक्ता मार्गदर्शन

रामचन्द्र मिश्र

भारतीय संस्कृति में नित्यप्रति पूर्ण स्नानोपरांत केशसज्जा एवं कपाल को शीतल रखने के लिए उपयुक्त केशतेलों पर प्रयोग की परंपरा सदियों से चली आ रही है। इस परंपरा को कायम रखते हुए वर्तमान में केशतेलों के निर्माण तथा प्रयोग में बहुगुणित वृद्धि हुई है। इन केशतेलों के प्रकार, गुणधर्म एवं प्रयोजनों के संबंध में बहुसंख्यक उपभोक्ता भ्रांतियों की भंवर में हैं जिसका एक कारण भ्रामक विज्ञापन भी है। प्रस्तुत लेख श्रृंखला के अंतर्गत तीन पूर्व लेखों में साबुन, प्रक्षालक तथा केशमार्जकों पर उपभोक्ता मार्गदर्शन दिया गया था। इस लेख में केशतेलों के सही चुनाव तथा उपयोग को इष्टतम करने के संबंध में वैज्ञानिक जानकारी दी गई है।

–सम्पादक

केश पुरुष और स्त्री दोनों के कपाल को रक्षक कवच एवं सौंदर्य प्रदान करने में मुख्य भूमिका निभाते हैं। इस कारण केशों को स्वस्थ, घना, लंबा और काला रखा जाता है। कविवर सुमित्रानंदन पंत ने केशसौंदर्य से सम्मोहित हो अपने युवा साहित्यिक जीवन के आरंभ में केशवर्धन की शपथ इन शब्दों में ली थी जो आजीवन अखंडित रही :

घरे लहरे रेशम से बाल
धरा है सिर में मैंने देवि
तुम्हारा यह स्वर्णिम श्रृंगार
स्वर्ण का सुरभित भार !

स्वस्थ सुन्दर केश के लिए तन मन का अच्छा स्वास्थ्य एवं सुपोषण पहली शर्त है। पर्याप्त प्रोटीन तथा विटामिन ई का सही उपापचय होने पर बालों का स्वास्थ्य बढ़ता है। ऐसी अवस्था में केशतेलों से अधिकतम लाभ प्राप्त होता है। वर्तमान में केशतेल के रूप में नारियल तेल, तिल तेल, जैतून तेल तथाा अल्प परिणाम में बादाम तेल का प्रयोग प्रचलित हो रहा है। इन तेलों को इत्रादि एवं अल्प मात्रा में खनिज तेलों के योग से मनमोहक बनाया जाता है। केशों के आसानी से फैलने और नम तथा अनुकूल दशा में रखने के साथ केशतेलों की श्यानता कम होना, बालों को चिपचिपा न बनाना, सुग्राही होना, क्षोभ या प्रदाह न पैदा करना और भंडारण के दौरान विकृतगंधी या विसायंध न होना इनकी प्रमुख आवश्यकताएँ हैं। शायद इसलिए अन्य तेलों का केशतेल के रूप में प्रयोग इसलिए अत्यल्प प्रचलित है। ज्ञातव्य है कि केशरहित गंजे कपाल में भी, जो यद्यपि लज्जा पैदा करता है, केशतेल का प्रयोग आवश्यक होता है। अतः हमें केश संबंधी वैज्ञानिक तथ्यों को प्रथमतः जान लेना होगा।

प्रकार एवं गुणवत्ता

मानव कपाल से एक चिपचिपा तेलीय पदार्थ 'सेबम' स्रावित होता है जो केश तंतुओं को ढंक कर इन्हें सूखने से रोकता है, हवा, वर्षा, ताप आदि के कुप्रभावों से बचाता है, केशों को बिखरने से रोकता है और उन्हें चमकीला बनाता है। यह वसामय द्रव अल्प मात्रा में निकलता है और सीमित रूप में ही कार्य कर पाता है, अतः अपर्याप्त साबित होता है। कुछ लोगों में सेबम अत्यल्प मात्रा में निकलता है जिससे केश भंगुर होकर टूटते और झड़ते हैं। खराब साबुन या केशमार्जक के प्रयोग तथा रासायनिक और तापीय प्रभावों से भी केश भंगुर हो जाते हैं। रंजकों–विरंजकों के दीर्घकालीन

प्रमुख केशतेलों में वसा अम्लों तथा विटामिन ई की प्रतिशत मात्रा

वसा अम्ल	जैतून तेल	बादाम तेल	नारियल तेल	तिल तेल
पामिटिक	9.5	7.0	21.0	8.6
ओलीक	82.0	70.0	44.0	42.2
स्टिएरिक	1.7	2.0	1.6	4.6
लिनोलिक	6.0	20.6	24.8	43.6
विटामिन ई (मिग्रा/100 ग्राम)	12	25	15	16

प्रयोग तथा कृत्रिम रूप से बालों को तोड़ने या घुँघराले बनाने पर भी बालों पर अत्याचार होता है। इन सब कुप्रभावों के बावजूद कुछ हद तक बालों में लोच कायम रहने का प्राकृतिक गुण होता है क्योंकि मृदुकारी सेबम केशिकीय (कैपिलरी) आकर्षण के बल पर केशों की जड़ तक रिसता जाता है ताकि केश लचीला और ढीला बना रहे।

लेनोलिन नामक स्नेहक पदार्थ का बालों पर प्रभाव सेबम की तरह होता है, अतः इसे केशतेल में डाला जाता है। यह पदार्थ भेड़ों की त्वचा से स्रावित हो उनके बालों में मोम के सदृश एकत्र होता है जिसे मँजाई के दौरान अलग कर लिया जाता है। दोनों में फर्क यह है कि सेबम वसा पदार्थ है जबकि लेनोलिन मोम है जिसकी कुछ लोगों पर प्रत्यूर्जता (एलर्जी) होती है। कुछ केशतेलों में विटामिन ई की अतिरिक्त मात्रा डाली जाती है किंतु कपाल के रंध्रों द्वारा सोख कर इनके उपापचय होने पर इस प्रकार केशों को लाभ पहुँचाने के कोई सबूत नहीं पाए गए हैं। सभी प्रकार के जैतून के तेल से जो विदेशों से आता है और मँहगा है, किसी विशेष फायदा होने की संभावना साबित नहीं हुई है। चार प्रमुख केशतेलों में वसा अम्लों तथा विटामिन ई की उपस्थिति तालिका में दी गई है।

भारत में नारियल तेल का प्रयोग केशों के लिए और अंगमर्दन में सर्वाधिक होता है जो बड़ों और बच्चों सभी के लिए उपयुक्त पाया गया है। नारियल तेल मध्यम श्यानता का स्वच्छ तेल है जो आसानी से त्वचा पर फैलता है और अच्छी तरह घुल जाता है। त्वचा एवं केशों पर नारियल तेल का मृदु प्रशामक प्रभाव पड़ता है। कपाल और शरीर पर इसके मर्दन से इसका त्वचा के छिद्रों में सर्वाधिक प्रवेश होता है जिससे त्वचा व केश में पोषण की क्रिया होती है। नम भंडारण के दौरान इसमें बिसायंध पैदा होती है जिसे उपचयन अवरोधी पदार्थों के अल्पयोग से टाला जा सकता है। आकर्षक बनाने के लिए इसमें इत्र भी डाले जाते हैं जो बहुधा संश्लेषित होते हैं और कुछ लोगों में प्रत्यूर्जता और सिरदर्द तक पैदा करने के कारण बनते हैं।

नारियल तेल मध्यम श्यानता का होने के कारण अल्प चिपचिपा होता है यद्यपि विज्ञापनों में बढ़ा चढ़ा कर बताया जाता है। इसकी श्यानता कम करने और हल्का बनाने के वास्ते इसमें पैराफीन जैसा खनिज तेल प्रायः दस फीसदी तक डाला जाता है जिसके कारण इसके प्राकृतिक गुणों में फेर बदल होना स्वाभाविक है। साथ ही पैराफीन तेल प्रायः पूर्णतः शुद्ध नहीं होता है और त्वचा के लिए असुरक्षित हो सकता है।

भारतीय मानक के अनुसार प्रथम श्रेणी के केशतेल में एक या एक से अधिक शुद्ध वनस्पति तेल हो सकते हैं, दूसरी श्रेणी में सिर्फ पैराफीन तेल होगा और तीसरी श्रेणी वनस्पति और पैराफीन तेलों के मिश्रण के रूप में मानी गई है। मानक में स्पष्टता न होने के कारण नारियल और पैराफीन तेलों के मिश्रण को 'नारियल केशतेल' के नाम से बेचा जाता है जो भ्रामक एवं अवांछनीय है। इसमें कई योगज रसायन भी मौजूद हो सकते हैं। आवश्यक यह है कि केशतेलों की बोतलों पर उसकी श्रेणी छपी हो तथा मिश्रित होने की अवस्था में तेलों का अनुपात दिया गया हो।

नारियल केशतेल की उत्तमता इस तथ्य से भी ज्ञात होती है कि इसका प्रयोग दवाओं, क्रीम, मलहम और आँख के लोशन में होता है। कुछ लोगों के बाल में रूसी की शिकायत होती है किंतु इसका कारण

केशतेल नहीं है। इसके लिए नारियल और पैराफीन तेल मिश्रित तीसरी कोटि के केशतेल प्रचार में जाए जा रहे हैं जिनमें हानिकारक जीवाणुनाशक रसायन होते हैं। रूसी न कोई असामान्यता है, न कोई बीमारी बल्कि गम्भीर यौवनारम्भ और इसके बाद के कुछ वर्षों तक कपाल और कोशिकाओं पर पपड़ी बनने की नैसर्गिक क्रिया है। यह किसी जीवाणु के प्रभाव से नहीं बनती, न ही इसे दूर करने के लिए हानिकारक जीवाणुनाशी रसायन का प्रयोग होना चाहिए। व्यक्तिगत कपाल स्वच्छता द्वारा रूसी का नियंत्रण करना ही सर्वोत्तम होता है।

उपभोक्ता मार्गदर्शन

केशतेल, केशमर्दन, केशवर्धन, केशरंजन, केशप्रत्यारोपण आदि के संबंध में बाजार में, दुकानों में, पत्र–पत्रिकाओं में और इन सबसे ज्यादा सशक्ततः इलेक्ट्रानिकी माध्यमों की बदौलत नित्यप्रति पर्याप्त उपभोक्ता विमार्गदर्शन परोसा जा रहा है जिसे विभ्रांत उपभोक्ता स्वीकार कर अंततः जब पश्चाताप करते हैं तब तक बालों को इतनी क्षति प्रायः हो चुकी होती है जिसकी पूर्ति करना सामान्यतः असंभव हो जाता है।

बालों का झड़ना, पुनः उगना या सफेद होना स्वाभाविक क्रियाएँ हैं जिनमें असंतुलन से उत्पन्न लक्षणों के आधार पर केशतेल या ऐसे उत्पाद ढूँढना निरर्थक होगा, क्योंकि इसका इलाज विज्ञापनों में नहीं, संबंधित चिकित्सक से ही प्राप्त किया जा सकता है।

एक जैव रयायनज्ञ की दृष्टि से व्यक्ति विशेष का केश उसके द्वारा लिए गए खनिज का दर्पण होता है। प्रोटीन, खनिज एवं विटामिनों के उपापचय द्वारा बालों का वर्तमान और भविष्य बनता है जो उपभोक्ता केशसौंदर्य हेतु कुछ भी करने से हिचकिचाते नहीं, उनका मार्गदर्शन उपरोक्त तथ्य ही कर सकता है।

केशवर्धन या केशस्वास्थ्य का संबंध स्थापित विशेष आहार के साथ, न कि केशतेलादि के साथ, इतना घनिष्ठ है कि केशपरीक्षा से यह भी ज्ञात हो सकता है कि व्यक्ति ने पिछले सप्ताह कैसा आहार ग्रहण किया था। यहाँ तक कि मृत्यु के पश्चात् भी केशपरीक्षा मनुष्य के प्रिय आहार की सूचना दे सकती है।

सारांशतः केशतेल के रूप में ताजे (बिसायंध–रहित) उपयुक्त वनस्पति तेल (नारियल, तिल आदि) का ही प्रयोग करें। केशों को सदैव हल्के नरमी से झाड़ें संवारें।

नारियल/तिल तेल में दस फीसदी पैराफीन तेल का मिश्रण मानक द्वारा स्वीकृत किया गया है, बशर्ते पैराफीन तेल हानिकारक अशुद्धियों से मुक्त हो। आम उपभोक्ता के लिए उपरोक्त तथ्य को सुनिश्चित करना सामान्यतः संभव नहीं है।

नारियल/तिल तेल में आंवला, ब्राह्मी, सुगंधित पुष्पों के सत्व का समावेश अनुभव के आधार पर लाभप्रद पाया गया है किंतु गुणवत्ता संबंधी विश्वसनीयता फिर भी विचारणीय है।

वनस्पति केशतेलों में उपस्थित अल्प नमी की मात्रा लाभप्रद होती है। कपाल पर तेल से प्राप्त वसा का रक्षक कवच फैलने, नम्यता रखने एवं केशों के बनाव शृंगार में नमी की भूमिका होती है। उबाले हुए नमीरहित तेल में यह गुण अनुपस्थित हो सकते हैं।

केशतेलों में आक्सीकरण अवरोधक टोकोफेराल का योगज के रूप में प्रयोग तेल की गुणवत्ता बनाए रखने में लाभप्रद होता है। इस प्रकार वनस्पति तेलों में उपस्थित सेबम सदृश वसा अंश बना रहता है। यह गुण खनिज तेलों में अनुपस्थित होता है। सारांशतः केशतेल के लिए वही तेल उपयुक्त होते हैं जिनकी 'आयोडीन संख्या 105' से कम हो।

स्वाभाविक है कि उपभोक्ता विमार्गदर्शन से मार्गदर्शन की ओर जाने के लिए वैज्ञानिक जानकारी का होना अनिवार्य आवश्यकता है जो केशतेल जैसे सामान्य उपभोक्ता पदार्थ के संबंध में उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी किसी जटिल पदार्थ के लिए। जातीय नाम को व्यापारिक नाम देने के साथ ही उसके साथ छद्म विज्ञान का मेल हो जाता है और इसीलिए 'नारियल केशतेल' तथा 'नारियल तेल' में जैसा पूर्व वर्णित है, भारी अंतर हो सकता है। उपभोक्ता मार्गदर्शन द्वारा ही ऐसे छद्मयुक्त अंतर को समझा जा सकता है और उससे होने वाली हानियों से बचा जा सकता है।

भारतीय उपभोक्ता मार्गदर्शन संघ
मुम्बई

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक : मृदा उर्वरता
लेखक : डॉ0 काशीनाथ तिवारी, निदेशक, पोटाश एंड फास्फेट इंस्टीट्यूट आफ कनाडा–इंडिया प्रोग्राम, गुड़गाँव, हरियाणा
प्रकाशक : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण : 2000, **पृष्ठ :** 540, **मूल्य :** 410 रुपये

डॉ0 काशीनाथ तिवारी प्रसिद्ध मृदा विज्ञानी हैं। उन्होंने चन्द्रशेखर आजाद विश्वविद्यालय कानपुर में वर्षों मृदा विज्ञान का अध्यापन किया है और उत्तर प्रदेश की मिट्टियों में सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की उपस्थिति एवं उनकी न्यूनता के विषय में महत्वपूर्ण शोध कार्य किया है। डॉ0 तिवारी प्रारम्भ से ही हिन्दी में कृषि विज्ञान विषयक लेखन करते रहे हैं और अनेक बार पुरस्कृत भी हुए हैं। उन्होंने जब से पोटाश एण्ड फास्फेट इंस्टीट्यूट का निदेशक पद संभाला है, तब से उर्वरकों तथा उर्वरता के विषय में कई पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित करके कीर्तिमान स्थापित किया है। सम्भवः वे ऐसे मृदा विज्ञानी हैं जिन्होंने अपने दायित्व को समझा है और निबाहा है।

समीक्ष्य पुस्तक 'मृदा उर्वरता' अपनी कोटि की सर्वथा नवीन पुस्तक है। अब से 25 वर्ष पूर्व पन्तनगर से इस विषय पर एक छोटी पुस्तक छपी थी किन्तु उसमें भूमि उर्वरता के क्षेत्र में, विशेषतया सूक्ष्म मात्रिक तत्वों के विषय में, ऐसी सामग्री नहीं दी गई थी, जो भारतीय मिट्टियों से पूरी तरह सम्बद्ध होती। डॉ0 तिवारी ने अपने वर्षों के शोध परिणामों, अनेकानेक संगोष्ठियों में सहभागिता से प्राप्त अनुभवों एवं मृदा उर्वरता से सम्बद्ध नवीनतम शोध परिणामों के आधार पर इस वृहद् ग्रन्थ को तैयार किया है जो पठनीय है।

इस पुस्तक में कुल 11 अध्याय हैं जिनमें से अध्याय 3 जो मृदा उर्वरता मूल्यांकन से सम्बद्ध है वह सर्वाधिक उपयोगी है। इसके बाद के अगले अध्याय नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटैशियम, कैल्सियम आदि पर हैं। अध्याय 8 में सूक्ष्म पोषक तत्वों का विशद वर्णन है। अध्याय 9 सूक्ष्ममात्रिक तत्वों से सम्बन्धित है। अध्याय 10 में सूक्ष्मजीवों के महत्व को रेखांकित किया गया है और अन्तिम अध्याय में भारत में स्थाई और दीर्घकालीन उर्वरक परीक्षणों का वर्णन हुआ है। परिशिष्ट में उर्वरकों से सम्बन्धित अनेक उपयोगी आँकड़े दिए गए हैं।

इस पुस्तक की विशेषता है भारतीय मिट्टियों में किए गए शोध परिणामों को सारणीबद्ध करके विवेचना सहित प्रस्तुत करना और आरेखों द्वारा चित्रित करना। पूरी पुस्तक में स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का ही पालन हुआ है। शब्दावली आयोग से प्रकाशित होने के कारण इसमें वर्तनी की त्रुटियाँ नहीं होनी थीं किन्तु अनेक स्थलों पर वे आ गई हैं (यथा पृष्ठ 28 से 33 तक कम से कम 20 त्रुटियाँ हैं)।

यह पुस्तक मृदा विज्ञान के छात्रों, शोधकर्ताओं तथा अध्यापकों के लिए समान रूप से उपयोगी है। पहली बार इतने विस्तार से मृदा उर्वरता पर एक ऐसी पुस्तक आई है जो इस विषय की विदेशी पुस्तकों से टक्कर लेने वाली है। निस्सन्देह इस पुस्तक से पुस्तकालय की पठनीयता में वृद्धि होगी।

डॉ. शिवगोपाल मिश्र
प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
इलाहाबाद–211001

निवेदन

लेखकों एवं पाठकों से :

1- रचनायें टंकित रूप में सुलेख रूप में कागज के एक ओर लिखी हुई भेजी जायें।
2- रचनायें मौलिक तथा अप्रकाशित हों, वे सामयिक हों, साथ ही साथ सूचनाप्रद व रुचिकर हों।
3- अस्वीकृत रचनाओं को वापस करने की व्यवस्था नहीं है। यदि आप अपनी रचना वापस चाहते हैं तो पता लिखा समुचित डाक टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें।
4- रचना के साथ भेजे गये चित्र किसी चित्रकार द्वारा बनवाकर भेजे जायें तो हमें सुविधा होगी।
5- नवलेखन को प्रोत्साहन देने के लिए नये लेखकों की रचनाओं पर विशेष ध्यान दिया जायेगा। उपयोगी लेखमालाओं को छापने पर विचार किया जा सकता है।
6- हमें चिन्तनपरक विचारोत्तेजक लेखों की तलाश है। कृपया छोटे निम्न-स्तरीय लेख हमें न भेजें।
7- पत्रिका का अधिकाधिक रुचिकर एवं उपयोगी बनाने के लिए पाठकों के सुझावों का स्वागत है।

प्रकाशकों से :

पत्रिका में वैज्ञानिक पुस्तकों की समीक्षा हेतु प्रकाशन की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए। समीक्षा अधिकारी विद्वानों से कराई जायेगी।

विज्ञापनदाताओं से :

पत्रिका में विज्ञापन छापने की व्यवस्था है। विज्ञापन दरें निम्नवत् हैं :-
भीतरी पूरा पृष्ठ 1000रु०, आधा पृष्ठ 500रु०, चौथाई पृष्ठ 250रु०,
आवरण द्वितीय तथा तृतीय 2500 रु०, आवरण चतुर्थ 4000रु०

भेजने का पता :

प्रधानमंत्री
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद
फोन नं. (0532) 460001
ई-मेल vigyan1@sancharnet.in
वेब साइट www.webvigyan.com

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मुम्वई तथा आंध्र प्रदेश के शिक्षा-विभागों द्वारा स्कूलों, कॉलेजों और पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

विज्ञान परिषद् प्रयाग में आयोजित शब्दावली कार्यशाला
का उद्‌घाटन करते हुए डा० कृष्ण बिहारी पाण्डेय, अध्यक्ष लोक सेवा आयोग

विज्ञान दिवस के अवसर पर विज्ञान परिषद् द्वारा प्रदत्त
'विज्ञान प्रदीप' सम्मान ग्रहण करते डा० पृथ्वीनाथ पाण्डेय